

कब तक निहारूँ

'कब तक निहारूँ' का विषय मानव मन में व्याप्त उसके सुख दुख की गीली अनुभूतियों का ही एक आंसू भरा चित्रण है जिसे इसके आधार से सम्बन्धित लोकगातों की ,पृष्ठभूमि पर ही आंकने का लेखक ने सुन्दर से सुन्दर रूप में यत्न किया है, और जन्म दिया है एक ऐसे माधुर्य और प्रभावशाली मार्मिकता को कि पढ़ते पढ़ते नयन भर आते है। और फिर मानव मन तथा उसके आंसुओं की इन्हीं बेचैनियों के बीच तड़पता हुआ समाप्त हो जाता है, 'कब तक निहारूँ' का विषय — किन्तु छोड़ जाता है अपने पाठक के समक्ष एक ऐसी अज्ञात सम्मोहिनी का तान-बाना जिस के बीच वह उलझा रह जाता है। श्री अरविन्द के इसी विषय की विवेचना करते हुये एकबार 'युवक' मासिक, ने लिखा था, "अध्यनशील लेखक ने जिस सरलता से मानव जीवन के इस दुखे हुये पक्ष को उभारा है उसका स्पष्ट प्रमाण तो यही है कि साधारण से साधारण पाठक तक इसे सुविधा-पूर्वक आत्मस्थ कर सकता है' "।

कब तक निहारूँ

लेखक की अन्य रचनाएँ

१. भारत के आदिवासी
२. भूल भुलैयां
३. अन्तर्वासी विनोद
४. धरती माता
५. गीत-भारती
६. मयूर सिंहासन
७. हम पंछी पंजाब के
(यह अन्तिम पुस्तक अभी प्रेस में है)

कब तक निहारूँ

लेखक
जनक अरविन्द

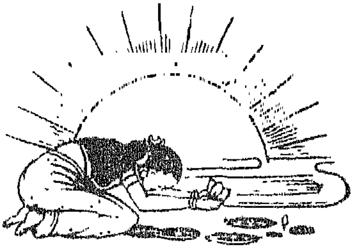


दी इण्डियन पब्लिकेशन्स, अम्बाला छावनी

प्रकाशक :
प्रो० पी० वेद
मैनेजर, दी इण्डियन पब्लिकेशन्स
अम्बाला छावनी

मूल्य ४'०० रुपये

मुद्रक :
श्याम सुन्दर,
गिरी प्रिन्टर्ज़
अम्बाला शहर



एक जलती हुई नारी के नाम

सुचरितवती 'कांचन' !

अनेक वर्ष बीत गये हैं तुम से बिछड़े हुये·········लगता है,... जैसे एक जमाना गुजर चुका है,······फिर भी······विलगता के इस दीर्घ काल में तुम मुझे सदा ही याद आती रहीं···कभी······एक क्षण के लिये भी······तुम्हारे भोले और शान्त मुखड़े की छाया मेरे अन्तर से मिट नहीं पाई।

विच्छेद का यह पहाड़ सा कठोर काल······मैं जानता हूँ प्रिया !·········तुम ने हृदय की आग में झुलसते हुए ही बिताया है······पर एक सिसकता हुआ शब्द भी—कभी इसका सुनाया नहीं किसी को जाकर······पलकें भर भर कर हजारों ही बार···तुम ने ढुरकाया है अपने मोती से पवित्र आँसुओं को······किन्तु कभी उन्हें दर्शाया नहीं किसी के आगे रो कर,······यह सब मैं जानता हूँ,······ और ऐसे पत्रों से तो मेरी फाइलें भरी पड़ी हैं, जिन में मुझे तुम्हारा ऐसा ही सिसकता सा रूप देखने को मिलता है।

जाने कितनी बार ऐसा हुआ है······जाने कितनी बार आहत हुये है यह प्राण उन क्षणों की याद कर के······जब...विदा की उन भिचती हुई घड़ियों में हजार रोकने पर भी......सिसकते हुये हृदय की मौन हिल्कियों के बीच से उबल कर आँसुओं का एक तूफ़ान तुम्हारे नयनों में झिलमिला उठा था·········और जिसे अपने आंचल में छुपाने का यत्न करते हुये,······तुम ने मुझे विदा दी थी,···आज भी वह दृश्य···उसी दिन की भाँति साकार है इन आंखों के आगे,··· जब मैं तुम से अलग हो रहा था······और मेरे यह क़दम सहमते हुए से पड़ रहे थे······तो तुम उदास खड़ी निहार रही थीं·········एक हताश मानवी की भाँति········कवचहीन—टूटी सी !

इन सुधियों ने आज तक हज़ारों बार कसकाया है मेरी आत्मा को·········इन स्मृतियों का स्पर्श पाकर जाने कितनी बार कराहे हैं मेरे प्राण,········और एक दिन ऐसा अनुभव हुआ······जैसे,— मेरे अन्तर में भी कहीं कुछ जल रहा है,·········जिसकी झुलसन को सहा नहीं जाता,·········जिसकी कसकन को कहा नहीं जाता,...... और फिर निकले चित्कार·····और लगा,—जैसे इन के बीच से भी कुछ दुःख दुख कर बहता जा रहा है······और फिर इसी दुखे हुये रस में भीग कर हुआ, 'कब तक निहारूँ' का जन्म·····जिसे आज तुम्हें अर्पित् करते हुये मुझे एक सहारा सा मिल रहा है !

नहीं जानता काँचन ! कि यह सब क्या है·········न जाने किस अस्तव्यस्त रूप में यह आज प्रतिभाशाली पाठकों के समक्ष अग्रसर होने की बाट में खड़ा है,·········इस अवसर पर मेरी इस टूटी सी भेंट को स्वीकार करो देवी ! केवल

तुम्हारा ही
जनक अरविन्द

क्रम

वर्तमान सभ्य समाज और लोक जीवन

सच पूछो तो आज के युग में लोक जीवन की छाया कम ही देखने को मिलती है, फिर भी उसका थोड़ा बहुत अंश यदि कहीं दिखाई पड़ता है, तो वह है केवल ग्रामों की जनता या वनों और पर्वतों पर बसने वाले वे आदिवासी जो आज भी इस तेजी के साथ बदलती हुई दुनियाँ से अलग अपनी प्राचीन अवस्था में ही संतुष्ट बैठे हैं। अपने देश या प्रदेश की पुरातन संस्कृति को अपनी छातियों से चिपटाये इस प्रकार जी रहे हैं, जैसे यही उनका प्राण है। वास्तव में यही वे लोग हैं, जो किसी भी राष्ट्र की प्राचीन संस्कृति को अपने जीवन में उतार कर उसे जीवित रखते हैं। इसी लिए तो कहा जाता है, कि किसी भी लोक संस्कृति की आत्मा गांवों, वनों और पर्वतों के आंचल में रहने वाले वही साधारण और भोले भाले लोग होते हैं, जिन्हें हम नई रोशनी के अनुयायी असभ्य समझते हैं और उन्हें अपने से निम्न समाज का अनुयायी समझ कर उन से परे परे रहने का यत्न करते

हैं। क्या यह इसीलिए कि जिस झूठे और अप्राकृतिक जीवन या फ़ैशन-परस्ती को आज हम ने अपना रखा है, उसे वे नहीं अपना सके। परन्तु यह तो कोई ऐसा कारण नहीं है, जिसके प्रभाव में आकर हम उन से घृणा करने लगें। फिर ऐसा क्यों है ? यदि नई रोशनी की चटक मटक को अपनाने में वे लोग संकोच करते है, तो इसमें घृणा करने की कौन सी बात है !

पर शायद हम भुला बैठे है, अपने आप को। सब कुछ देख कर भी हमें अपना अतीत याद नहीं आता। हम यह भूल चुके हैं, कि एक समय था, जब हमारे पूर्वज भी इन्हीं की भांति भोले भाले और इसी प्रकार के साधारण जीवन को अपनाने वाले थे। और यही वे लोग है, जो आज हमारे पूर्वजों के पुरातन जीवन की झांकी का शान्त और सुहावना दृश्य हमारे सामने प्रस्तुत कर रहे है, और याद दिला रहे है उसी प्राचीन संस्कृति की, जिस पर हमारे देश के इतिहास को गर्व है। परन्तु इन भोले भाले और साधारण लोगों की उपेक्षा कर के तो अपनी प्राचीन संस्कृति की महानता का प्रचार करने वाले हम वर्तमान सभ्य समाज के अनुयायी अपनी संस्कृति तथा उसका निर्माण करने वाले अपने पूर्वजों का ही अपमान करते हैं ; जो कि हमें कभी नहीं करना चाहिए, और इतना ही नहीं अपितु हम लोग यह भी भूल जाते हैं, कि जिस संस्कृति पर आज हमें गर्व है, और जिस की ओर आज का संसार आश्चर्य-चकित नेत्रों से निहारा करता है, इन्हीं साधारण लोगों ने उसे अभी तक जीवित रखा है, अन्यथा हमें तो इस नवीन सभ्यता के आडम्बर में फँस कर कुछ भी याद नहीं रहा था। यदि ये लोग भी हमारी ही तरह वर्तमान युग के झूठे और जादू भरे प्रकाश में रत हो कर अपने आप को

भुला बैठते, तो आज हमें अपनी उस प्राचीन लोक-संस्कृति की याद अवशेष रूप में कैसे आ पाती, जिसे जगत के सामने प्रस्तुत करके हम ने संसार की सभी मानव जातियों के बीच सर्वोच्च सांस्कृतिक पद प्राप्त किया है।

एक समय था, जब हमारे भारत देश के सभी गांव और नगर एक ही डोरी में बंधे हुए समान दीख पड़ते थे, और जंगल के बीच बनी हुई एक अस्त-व्यस्त झोंपड़ी भी इसी डोरी का एक अंग ज्ञात होती थी, परन्तु आज इन सब में परस्पर असमानता आ गई है। वर्तमान सभ्य समाज ने इनके कुसुम-रूपी मेल में खटाई का पुट डालकर इन्हें एक दूसरे से अलग कर दिया है। किन्तु इस का परिणाम क्या हुआ ?

प्रकृति की बांधी हुई एक डोरी थी, जिसे इस सभ्य समाज ने तोड़ डाला और आज मस्तिष्क की हेरा-फेरियों के अतिरिक्त उसके पास कुछ भी नहीं, तथा जिस की फीकी रोशनी के बीच आज हर ओर अशान्ति के घनघोर बादल ही उमड़ते हुए दीख पड़ रहे हैं। अविश्वास के धुएँ में इस जैसे सभ्य कहलाने वाले समाज के जाने कितने अनुयायियों का दम घुटा जा रहा है। अस्वाभाविकता, भय और आशंका ही हर स्थान पर हाहाकार मचाते फिर रहे हैं। जीवन में नैराश्य ही दिखाई पड़ता है। कोई सुख नहीं, शान्ति नहीं, हर ओर मिथ्या ज्ञान के अंधेरे में भटकने वाले मानव का ही साम्राज्य दीख पड़ रहा है।

मस्तिष्क के षड्यंत्रों की रचना रचा कर ही वर्तमान सभ्य समाज ने अपनी ऐसी शोचनीय दशा बना ली है। हृदय की सरलता का इस के बीच कोई स्थान नहीं, और होना भी

असम्भव ही है। सत्य और असत्य दोनों को साथ साथ नहीं चलाया जा सकता। एक की वृद्धि में दूसरे का ह्रास अवश्य ही होता है। आज की बढ़ती हुई सभ्यता में अस्वाभाविकता ही जब उन्नति के शिखर पर है तो फिर स्वाभाविकता का ह्रास होना निश्चित ही है, और वह निरन्तर होता चला जा रहा है। यही वह जहर है, जिसने वर्तमान सभ्य समाज में हाहाकार उत्पन्न कर रखा है। यह हाहाकार हमारे इस समाज की अशान्ति का नहीं अपितु उस प्रकृति का है, जिसके अंगों को काट काट कर हम ने ऐसे समाज का निर्माण किया है जो प्रकृति के बिल्कुल प्रतिकूल है, और इसी लिए वह अस्वाभाविक भी है।

वर्तमान सभ्यता का हमारी कविता पर प्रभाव

उस आदि युग की बात कौन जानता है, जब इस जगत में आने के पश्चात् सब से पहली बार जाने किस सुख या दुःख की गहरी अनुभूतियों से व्याकुल होकर मानव हृदय में भावना के अंकुर फूटे होंगे। परन्तु इतना निश्चय है कि ऐसा तभी हुआ होगा, जब इस दुनियाँ में रहते हुए तथा प्रकृति के आंचल में पनपते हुए मानव में प्रकृति और उस की इस आश्चर्यजनक दुनियाँ के प्रति आभास करने की शक्ति जागी होगी और तभी से कविता का भी जन्म हुआ। परन्तु उस युग की कविता और आज की कविता में बड़ा भारी अन्तर है। उस दिन तो कविता का स्वरूप जितना अस्त-व्यस्त और साधारण था उतना ही सच्चा और स्वाभाविक भी था। आज की कविताओं की भांति वे मस्तिष्क के परिश्रम और आत्म-प्रवंचन से अछूती थीं, उस दिन तो मानव हृदय से भाव रूप में जो कुछ भी उभर आता था, उसे वह अपनी सीधी सादी भाषा में व्यक्त कर के स्वतन्त्रता पूर्वक अलाप दिया करता था, और यही उसकी कविता थी।

परन्तु आज की कविताओं का वैसा रूप नहीं है। कारण यह है कि प्राचीन युग की कविता का जन्म तो मानव हृदय में उसके हृदय के संतुलन को जाने कौन सी प्रतिक्रिया से अकुला कर अपने आप ही हो जाता था, परन्तु आज उसका जन्म अपने आप नहीं होता, अपितु उसे जन्म दिया जाता है। उसे खींच कर लाया जाता है मस्तिष्क की उन संकुचित नालियों से, जहां पर विचार उन नालियों की भांति ही संकुचित हो जाते हैं, उनमें तनिक भी स्वाभाविकता नहीं रहती। और फिर उन्हें उसी मस्तिष्क की सहायता से शब्दों के सौन्दर्य में सजाने का उद्योग किया जाता है।

परन्तु विचारों या भावों का आदि-स्रोत तो हृदय होता है मस्तिष्क नहीं। मस्तिष्क तो विचारों को सदा तोड़ने मरोड़ने का कार्य ही करता है। बिल्कुल उसी प्रकार जैसे यदि हम कहीं जा रहे हों, और रास्ते में कोई चीज़ हमें अपनी ओर आकर्षित करे, तो उसे देखने के लिये हम अपने आप ही कुछ देर के लिये रुक जाते हैं। उसका कारण यही है, कि हमारा हृदय उसे देखने की चाह रखता है। और ऐसा ही हम प्रायः कहा भी करते हैं, कि 'अमुक वस्तु को देखने के लिये हमारा हृदय चाह रखता है', परन्तु क्या हम कभी ऐसा भी कहते हैं, कि अमुक वस्तु को देखने की इच्छा हमारा मस्तिष्क कर रहा है? उसका कारण यही है, कि हृदय ही किसी इच्छा को अपने बीच से उभारता है, परन्तु हृदय की परख न रखने वाले मस्तिष्क के अभ्यासी उस इच्छा को अपने दिमाग़ी सांचों में ढाल कर उसका प्राकृतिक रूप नष्ट कर डालते हैं, और फिर उसका वैसा ही रूप इस जगत के सामने रह जाता है, जैसा कि उन सांचों का होता है, जिसके बीच डाल कर उनकी ढलाई की गई है।

यही दशा आज की कविता की भी है। मस्तिष्क के सांचों ने उसके शुद्ध रूप को नष्ट-भ्रष्ट करके उसे अशुद्ध कर डाला है। डाली पर अपने आप ही उग आने वाले सुगन्धित पुष्प की सी उसकी आत्मा को निकाल कर उसे कागज़ के सुगन्ध से हीन पुष्पों की भांति आत्मविहीन कर डाला है, और कर डाला है उस मिट्टी के पुतले की भांति प्राणहीन जो न हँस सकता है, न बोल सकता है, न चल फिर सकता है, और जिसमें कोई भी प्राकृतिक आकर्षण नहीं। वैसे कहने को तो वह मानव का ही पुतला कहलाता है, परन्तु क्या जिस प्रकार मानव के शरीर में प्राणों का संचार रहता है, और उन प्राणों के बीच एक आत्मा निवास करती है उसी प्रकार मिट्टी के पुतले के शरीर में भी ऐसे ही गुणों का निवास होता है? यदि नहीं! तो फिर ऐसे खोखले पुतले का क्या महत्त्व! उसकी क्या बराबरी उस सजीव मानवीय पुतले से, जिसको प्रकृति अपने आप ही जन्म देती है।

इसी लिये उस कविता का भी कोई महत्त्व नहीं होता, जिसको जन्म दिया जाता है। ऐसी कविता के खोखलेपन को शब्दों के सौन्दर्य में कितने ही यत्न से चाहे क्यों न ढक दिया जाय, परन्तु फिर भी उसका महत्त्व उतना ही रहेगा, जितना कि मिट्टी के एक उस पुतले का जिसे कि अनेक प्रकार के खूबसूरत रंगों से चुपड़ कर रख दिया गया है। जब जीवित मनुष्य की सी बराबरी मिट्टी का वह एक अनेक प्रकार के रंगों से सजाया हुआ पुतला नहीं कर सकता, तो फिर शब्दों के सौन्दर्य में सजाई हुई बनावटी कविता भी उस कविता का मुक़ाबला क्या कर सकती है, जिसे प्रकृति अपने आप ही मानव हृदय में जन्म दे डालती है।

आधुनिक कविता और लोक गीत

हमारी आज की शास्त्रीय ढंग की कविताएँ मस्तिष्क के दाँव-पेचों में फँस कर बिल्कुल प्राण-हीन हो चुकी हैं। उनमें कोई आकर्षण नहीं, कोई तेज नहीं, कोई बल नहीं, कोई रस नहीं, केवल मिथ्या-कल्पना और आडम्बर ही उनमें भरा हुआ दीख पड़ता है। और इतना ही नहीं अपितु छन्दालंकारों की बेड़ियों में जकड़ कर उन्हें कुछ कवियों ने जन साधारण से दूर उन थोड़े से लोगों के लिये ही सीमित कर दिया है, जो शास्त्री हैं, या वे जिन्हें इन अलंकारादि वर्तमान काव्य-गुणों का थोड़ा बहुत ज्ञान है। शेष लोगों की समझ में यह कविताएँ न तो कभी आई ही हैं, और ना कभी आ ही सकती हैं। इन की दशा आज बिल्कुल वैसी ही है, जैसी कि प्रायः रोज़ रेडियो या कभी-कभी किन्हीं उत्सवों या सम्मेलनों में सुनाई जाने वाली उन कविताओं की जिन्हें कि रागी या उस्ताद लोग गला फाड़-फाड़ कर जन साधारण के सामने प्रस्तुत करते हैं। भले ही साथ बैठे अन्य उस्ताद लोग उन्हें सुन कर उनको गले-बाज़ी की कितनी भी दाद क्यों न दिये जायें, किन्तु सच तो यह है कि वे किसी की भी समझ में नहीं आतीं। कण्ठ

बाजों की कला में चाहे ऐसे उस्ताद कितने भी प्रवीण क्यों न हों, परन्तु प्रचलित रीति द्वारा भाँय-भाँय करके वे साधारण जनता की हृदय-तन्त्री के तार हिलाने में कभी समर्थ हो सकते हैं, इसमें सन्देह है।

जन-साधारण के हृदय की तृप्ति तो केवल वही कविताएँ कर सकती हैं, जिनमें हृदय की सरलता और सरसता का अमृत भरा होता है। मस्तिष्क की गहराइयों से कठोर परिश्रम द्वारा खींच कर लाई हुई मदिरा में तो चाहे कितना भी दिमाग़ी परिश्रम क्यों न किया गया हो, तो भी उनके द्वारा उनकी तृप्ति करना पूर्ण-रूपेण असम्भव है। इस लिए शास्त्रियों के शिष्ट समाज से दूर जन जन की लोक-प्रिय कविताओं का अस्तित्व हमें केवल उन्हीं लोगों के पास मिलेगा, जो ग्रामीण हैं या वे जो, कहीं पर भी रहते हुए वर्तमान शिक्षा और इससे निर्मित आधुनिक समाज की छाया से बचे हुए हैं।

यह ठीक है, कि उनकी कविताओं में शब्दों का सौन्दर्य नहीं होता, तथा वे स्वयं भी पूर्ण-रूपेण अशिक्षित ही होते हैं। परन्तु इससे उनके हृदय का क्या सम्बन्ध? शिक्षा या अशिक्षा का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, वह तो एक ऐसा शुद्ध दर्पण होता है, जिसमें मानव की आत्मा का स्पष्ट प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है। यदि किसी बड़े कवि का हृदय किसी दीन पुरुष को देख कर द्रवित हो उठता है, तो एक ग्रामीण या अशिक्षित जन का हृदय ऐसे ही व्यक्ति को देख कर क्या नहीं पिघल सकता? फिर उस का एक शिक्षित कवि या किसी अशिक्षित व्यक्ति से क्या वास्ता!

कविता तो हृदय का धन होती है, उसका सम्बन्ध केवल हृदय से होता है, और यह केवल उसी की दासी होती है, जिसके पास हृदय है। जहाँ हृदय की अनुभूतियों को मस्तिष्क के अंकुश की ताड़ना में रखे जाने का प्रयास होता है, कविता की छाया का भी वहाँ परिचय नहीं होता। क्योंकि मस्तिष्क के आधार पर कविता का निर्माण मिथ्या कल्पना है।

अतः कविता का सच्चा रस केवल उन्हीं लोगों के कण्ठ से बहा करता है, जो हृदय के पुजारी हैं। मस्तिष्क के पुजारियों से वे दूर रहते हैं, ग्रामों, वनों और पहाड़ों में। और उन्हीं की कविताओं को हम लोक-गीत कहते हैं। ऐसे गीत हमारे भारत वर्ष के खण्ड-खण्ड में बिखरे पड़े हैं। और ग्रामों या वनों और पर्वतों में रहने वाले आदिवासियों में तो इनके अथाह भण्डार मिलते हैं।

इन गीतों के अध्ययन के पश्चात यह तो पता चल ही जाता है, कि यह किस क्षेत्र के हैं। परन्तु इनके रचियताओं की खोज कर पाना बड़ा ही कठिन है। न जाने कहाँ कब और किस अवस्था में बैठा हुआ कोई मानव अपने हृदय से निकाल कर इन्हें अपनी कण्ठ—लहरी में भिगो कर कभी गा उठता है; और जब सुनने वालों के हृदय को ऐसा कोई गीत छेड़ने में समर्थ हो जाता है, तो वे उसे कण्ठस्थ कर लेते हैं। इस प्रकार एक से दूसरे और दूसरे से तीसरे कण्ठ तक पहुँचता हुआ वह गीत अपनी भाषा के समस्त क्षेत्र में लोक-प्रिय बन जाता है।

ऐसी ही मौखिक परम्पराओं के सहारे टिके हुए ये गीत अपने क्षेत्र में युग-युगान्तर तक बने रहते हैं। समय के प्रभाव से

कभी-कभी इनकी भाषा में थोड़ा बहुत परिवर्तन अवश्य आ जाता है, परन्तु फिर भी ये गीत भुलाये नहीं जाते। स्मृति के बल पर ही ये नये से पुराने और पुरानों से फिर नयों का रूप-धारण करते रहते हैं।

लोक गीतों की विवेचना करते हुये एक प्रसिद्ध विदेशी साहित्यकार श्री 'राल्फ विलियम्स' ने भी लिखा है :—

> "लोक गीत न पुराना होता है न नया। वह तो वन के एक वृक्ष के समान है, जिसकी जड़ें तो जाने कितनी दूरी तक धरती में समाई हुई हैं, परन्तु जिसमें से नवीन शाखाओं, पुष्पों, और पल्लवों का जन्म निरन्तर होता रहता है।"

—※—

भारतीय नारी और उसके गीत

हर देश में लोक गीत वहाँ की एक ऐसी अमूल्य सम्पत्ति होते हैं, जिसे वहाँ के लोग हर समय अपने हृदय के साथ लगाये रहते हैं। परन्तु भारतीयों का तो समस्त जीवन ही काव्य-मय है। जन्म से लेकर मृत्यु तक इस महान देश के वासियों की प्रत्येक श्वास से गीतों की ही मधुर ध्वनियाँ फूटा करती हैं; और ऐसा प्रतीत होता है मानो कविता ने केवल भारतीयों को ही अपने अधिकाधिक तथा श्रेष्ठतम प्यार का पात्र चुना है। यहाँ का कोई खण्ड भी ऐसा अछूता नहीं, जहाँ कभी किसी गीत की मधुर लय न गूंजी हो। और शायद ही किसी भारतीय का कण्ठ ऐसा हो, जिसने कभी कोई गीत न गाया हो।

भारत-वासी चाहे उत्सव या मनोरंजन में अपना समय बिता रहे हों और चाहे कठोर परिश्रम के कार्य पर डटे हों, परन्तु गीतों का प्रवाह उनके कण्ठ से प्रत्येक घड़ी बहता ही रहता है। न जाने इस देश की राहों ने अपने जन्म समय से आज तक अपनी गोद में चलने वाले थकान से चूर हुए कितने यात्रियों के रसीले कण्ठ सुने होंगे। न जाने यहाँ के अन्न से रिक्त

या भरपूर खेतों ने कार्य पर डटे हुए किसानों के कितने मस्ती भरे तराने सुने होंगे। इतना ही नहीं अपितु इन गीतों ने भारतीय जीवन के प्रत्येक पहलू का स्पर्श करके उन्हें अपने स्वच्छ और स्वतन्त्र साँचों में ढालने का भी पूरा पूरा यत्न किया है।

चरवाहा जब जंगल में अकेला अपने ढोर चराते चराते थक जाता है, तो किसी गीत की मधुर स्वर-लहरी को छेड़ कर ही वह अपने एकांकी-पन को भूलने का यत्न करता है। और पालकी उठाये चले जा रहे कहारों की राह जब काटे नहीं कटती तो गीतों के प्रवाह में खो कर ही वे अपनी मंजिल तक पहुँचने की चेष्टा करते हैं। और प्रातः अंधेरे में ही उठ कर *जाँत पर बैठ जाने वाली कोमल स्त्री भी जब अपने कठोर परिश्रम द्वारा उसे चलाती-चलाती थक जाती है, और फिर भी उसका पीसना अधूरा ही रह जाता है, तब वह भी इन गीतों के रस में ही लीन हो कर अपनी थकान को मिटाने का प्रयास करती है।

कहां से आते हैं यह गीत? यह कौन जाने! परन्तु इतना अवश्य है, कि इनकी रचना वर्षा की उन बूंदों की भांति होती है, जो वातावरण से प्रभावित हो कर बादल में से अपने आप ही चूपड़ती हैं।

पुरुषों की अपेक्षा नारियों ने ही अपने जीवन में ऐसे गीतों को अधिकाधिक स्थान दिया है, यही कारण है, कि पुरुष तो चाहे अपने अनेक कामों में इनके अस्तित्व को विस्मृत भी कर जायें परन्तु स्त्रियों का तो कोई कार्य भी इनके बिना सम्पन्न नहीं होता। इसके अतिरिक्त जहाँ तक वर्तमान सभ्यता द्वारा प्रभावित शहरी नारियों का प्रश्न है, वहाँ उन में शायद इस प्राकृतिक देन का

*चक्की

अभाव हो भी सकता है परन्तु ग्रामीण महिलाओं में इनका रूप सबल ही देखने को मिलता है। साथ ही इन गीतों में प्रधानता भी नारी जीवन को ही प्राप्त होती है। उसके जीवन के प्रत्येक अङ्ग को समय समय पर यह गीत अवश्य ही छूते आये हैं। समाज ने उनके साथ क्या क्या न्याय और अन्याय किया है, उसकी स्पष्ट झाँकी लोक-गीतों में ही दिखाई देती है। ऐसे गीतों की रचना स्वाभाविक ही हो जाया करती है, इसी लिए समाज की सत्ता उन्हें दबा नहीं सकती, अपितु उसके प्रत्येक पक्ष का सजीव चित्रण यह खुले रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत करते हैं।

यहाँ ही देखिये-एक कन्या धीरे-धीरे बाल्य-अवस्था से मुख मोड़कर अब बालापन में प्रवेश करने लगी है, परन्तु बचपना छूटता नहीं। बचपन के खेलों से उसे अब भी प्यार है। गुड़ियों और पांसों के खेल उससे छोड़े नहीं जाते। परन्तु उसकी माता समझती है कि वह अब जवान होने जा रही है। इस लिये उस की पुत्री को बचपने के इन खेलों का त्याग कर देना चाहिए।

उसे यह भी डर है, कि ऐसी बातें देख कर कहीं लोग उस पर उंगलियाँ न उठाने लगें, इसी लिये वह उसकी उपेक्षा करती है। उसे अब बचपन के खेल खेलने से रोकती है। वह क़ैद करना चाहती है,——उस पंछी को······जिसने जन्म से लेकर अपनी इस आयु तक कभी क़ैद नहीं देखी;··········क़ैद का नाम तक नहीं सुना।

और जब इस प्रकार की क़ैद देख कर उस भोली-भाली कन्या का हृदय भर आता है। तो अपनी माता के ऐसे कठोर प्रतिबन्ध को वह सहन नहीं कर पाती और अपने हार्दिक उद्‌गारों द्वारा

उसकी हृदय-तन्त्री को छेड़ने के लिये घर के जाने किस कोने में बैठ कर वह धीरे से गा उठती है। एक पंजाबी बाल-गीत में कन्या के इसी पहलू के दर्शन कीजिये :—

खेड खेड के खेहनूं गीहटे
खेड खेड के टाहणा
खेड खेड के लुकण-मिट्टी
लभणा ते लुक जाणा
खेडन दे दिन चार नी माए
फेर पंजवां दिन जद आए
गीहटे, टाहणा ते लुकण-मिट्टी
पीर .त्रिंजण . बन जाए

—[मैं गीहटे (पांसे) का खेल ही तो खेलती हूं,
या टाहणा खेल लेती हूं।
और या आंख मिचौली खेलती हूँ,
कभी छुप जाती हूँ, या कभी पकड़ी जाती हूं।
हे मां! खेलने के दिन चार ही तो होते हैं, इसलिये खेलने दे।
क्योंकि जब पांचवां दिन आएगा,
तो गीहटे, टाहणा तथा आंख मिचौली आदि यह सभी खेल,
फिर चरखे का रूप धारण कर लेंगे।]

दर्द, फरयाद का सजीव रूप है यह गीत! एक टीस भरी है इसके प्रत्येक शब्द में! लड़की जानती है,——और भली प्रकार समझती है,——कि एक दिन ऐसा आने वाला है,——और अब शीघ्र ही आने वाला है उसके जीवन में,——जब उसे

यह खेल, यह खिलौने, यह गाँव, यहाँ की गलियाँ, बचपन की सारी सखियाँ, माता पिता, और भाई- बहन आदि सभी सगे-सम्बन्धियों को छोड़-छाड़ कर सदा के लिये किसी अज्ञात देश को चले जाना होगा। अपनों का संग छोड़ कर पराया का सम्पर्क प्राप्त करना होगा। फिर तो यह सभी बातें उसके जीवन में एक धुन्धली सी तस्वीर बन कर रह जायेंगी,—एक याद बनकर खटका करेंगी उसके हृदय में। तभी तो वह माँ के इस नाजायज प्रतिबन्ध को सहन नहीं कर पाती। वह रोती है, फरयाद करती है, और कहती है, "मां, मैं तो तुम से अब छूटने ही वाली हूँ, तो फिर दो चार दिन का मेरा यह खेल भी क्या तुम्हें नहीं सुहाता, जो तुम मुझ पर प्रतिबन्ध लगाती हो?..............जिस दिन जाऊँगी, तो अपने यह सभी खेल इसी देश में छोड़ जाऊँगी,..........फिर दूसरे देश में जा कर तो मेरे पास यह खेल नहीं रहेंगे। वहाँ तो मेरा एक मात्र खेल सारा दिन गृहस्थी के कार्य करना और अवकाश के समय चरखा कातना ही रह जायेंगे। इसीलिए हे माता! तुम मुझ पर ऐसा घोर प्रतिबन्ध न लगाओ!"

परन्तु माता का भी क्या दोष? वह बेचारी इस प्रकार के प्रतिबन्ध कब लगाना चाहती है!..........उसका हृदय कसक उठता है ऐसा करते हुये। परन्तु विवश है,———वह डरती है,——ज़माने की उंगलियों से,———जो उसकी पुत्री की ओर अब उठने लगी होती हैं। पुत्री का जवान हो जाना भी माता पिता के लिये कितना भार स्वरूप बन जाता है। वह दिन-रात चिन्तित रहते हैं——अपनी रक्त से भी अधिक प्यारी, दुलारी बेटी को अपने से अलग कर देने के लिये। आखिरकार एक

दिन ऐसा आता है, जब पिता अपनी पुत्री के लिये वर खोजने के लिये जाने की तैयारी करता है, और चलने से पूर्व जब वह बेटी के पास आकर उसके भोले भाले सुन्दर मुखड़े की ओर दृष्टि करता है, तो उसे ऐसी प्रेरणा मिलती है, जैसे इस भोले भाले सुन्दर मुखड़े की भाँति ही सुयोग्य और सुन्दर मुखड़ा उसे भी तलाश करना होगा, अपनी इस दुलारी पुत्री के लिये।

तब उस घड़ी पुत्री जब अपने पिता के दिल में उठते, उभरते भावों को समझने की चेष्टा करती है, तो उसे लगता है, जैसे उसका मजदूर पिता एक अज्ञात वर के प्रति उस से कुछ पूछना चाह रहा है, कि—"हे बेटी ! मैं तुम्हारे लिये कैसा वर ढूँढूँ ?"— परन्तु कुछ पूछ नहीं पाता।

तब ऐसी अवस्था में उस भोली भाली कन्या के हृदय में क्या कुछ नहीं उठता ? हृदय से एक साथ उठ कर लाखों उद्गार उसकी छाती में चक्कर लगाने लगते हैं। वह चाहती है, कि अपने पिता से सब कुछ कह दे, कि किस और कैसे वर को पाकर वह सुखी रह सकती है, परन्तु नहीं कह पाती। लोक-लाज के भय से वह चुप चाप ही रह जाती है। क्योंकि हमारे समाज ने नारी वर्ग के किसी भी अङ्ग को ऐसी स्वतन्त्रता कब दी है, कि वह खुल कर अपने हृदय के भावों को किसी के सामने कभी प्रकट भी कर सके ! परन्तु लोकगीतों की रचना हृदय से होती है, जिन्हें कोई भी दबा नहीं सकता,....उनके स्वर तो अपने आप ही जब उभरने लगते हैं; तो उन्हें रोक पाना किसी के वश में नहीं होता। समाज की कठोर से कठोर यातना भी उन के समक्ष थक कर हार मान जाती है। तभी तो एक कन्या के भावों को भी वह रोक नहीं पाती। यदि

पिता के सामने लोक-लाज वश वह मौन रह जाती है, तो इसका यह अर्थ तो नहीं कि उसके हृदय में कभी कुछ उठता ही न हो !

यह ठीक है, कि वह स्पष्ट रूप से कभी किसी के सामने अपने हृदय की बात नहीं कह पाती, और वह इसीलिये कि समाज की उङ्गलियों से उसे भय लगता है, परन्तु जब वह गा उठती है; तो इन गीतों के रस में घोल कर वह अपने हृदय की एक-एक बात को खोल कर बरसा डालती है, और तब समाज अपनी हारी हुई दृष्टि से उसकी ओर निहारता है और देखता है, कि उसके अन्याय और अधर्म की पोल आज खुल रही है, उसके लोहे से भी अधिक कठोर प्रतिबन्ध को कितने यत्न से एक निर्बल कन्या के करुण-स्वर तोड़ फोड़ कर पाश पाश करते जा रहे हैं। परन्तु वह कुछ नहीं कह पाता। क्योंकि समाज मानव से तो टक्कर ले सकता है, परन्तु प्रकृति से टक्कर लेना उस के वश की बात नहीं। इसीलिये ऐसे गीत जो समाज की प्रत्येक अवस्था को नंगा कर के हमारे सामने प्रस्तुत कर डालते हैं, वह उन से भला कैसे टक्कर ले। क्योंकि इन की रचना तो स्वभाविकता के आधार पर होती है और जो मानव मस्तिषक के नहीं अपितु प्रकृति के उद्‌गार होते हैं।

एक मारवाड़ी कन्या के गीत में इसका स्पष्ट उदाहरण देखिये—

बाबा जी देस देता परदेस दीजो
म्हारी जोड़ी को वर हेर जो
हँस खेल ये बाबा जी री प्यारी
बनड़ी हेरयो ये फूल गुलाब को
कालो मत हेरो बाबा जी कुल ने लजावे

गोरो मत हेरो बाबा जी अङ्ग पसीजे
लांबो मत हेरो बाबा जी साँगर चूंटे
ओछो मत हेरो बाबा जी बावन्यू बतावे
ऐसो वर हेरो कासी को बासी
बाई के मन भासी हस्ती चढ़ आसी

—[हे बाबा ! मुझे देश की बजाए परदेश मे दे देना, परन्तु मेरी जोडी का वर ढूंडना ।
हे बाबा की दुलारी बेटी ! तू हँस खेल,
मैंने तेरे लिये गुलाब के पुष्प की भाति सुन्दर वर खोजा है ।
काला वर मत ढूंडना बाबा जी कुल को लाज लगेगी,
गोरा वर मत ढूंडना बाबा जी ! उसका अङ्ग पसीज जाता है ।
लम्बा वर मत ढूंडना बाबा जी ! सागर की फली ही नोचा करेगा
छोटा वर भी मत ढूंडना बाबा जी ! लोग उसे बौना बतायेंगे ।
हे बाबा जी ! मेरे लिये ऐसा वर ढूंड दो, जो काशी का वासी हो ।
वही तुम्हारी पुत्री के मन भाएगा, और वही हाथी पर चढ़ कर आएगा ।]

लोकगीतों के बोल इतने स्पष्ट होते हैं कि उनमें मानव हृदय की गहरी से गहरी प्रति-क्रिया को सरलता-पूर्वक देखा और अनुभव किया जा सकता है । यह ठीक है, कि भारतीय पिता और पुत्री कुछ विषयों पर परस्पर इतनी खुल कर बातें नहीं कर सकते, जितनी कि हमारे इन लोक गीतों की पंक्तियां उन्हें हमारे सामने व्यक्त करती है । परन्तु इस से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि ससार की छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी ऐसी कौन सी बात है जिस के बारे में इन्सान कभी न सोचता हो ! और यह तो

स्वाभाविक ही है कि जिन बातों को मुख से कहने में हमें संकोच अनुभव होता है, उसे न कह कर भी हम उसके प्रति अपनी शक्ति के अनुसार सोचते अवश्य हैं। ऐसा ही स्वभाव एक भोली भाली कन्या का भी होता है।

एकाकीपन या अपनी सखी-सहेलियों में बैठ कर जब वह कन्या अपने मन की आवाज़ को एक गीत की ओट लेकर कभी बाहर निकालती है, तो उसे लगता है जैसे वह एक गीत गा रही है, और जिस की स्वर-लहरियों के वेग में वह यह भूलती जा रही है, कि समाज ने उसे एक अबला का रूप समझ कर उसके समस्त मानवीय अधिकार उससे छीन लिये हैं।

वास्तव में लोकगीतों के स्वरों में ही हमें समाज का खुला रूप देखने को मिलता है। जन जन की वाणी में घुल कर बहने वाली इनकी धाराओं में हमें मानव की विवशताओं और उसके हृदय की पीड़ा का आभास लगता है। यहां ही देखिये कि एक कन्या है जिस का विवाह उस के मां बाप ने ग़रीबी-वश एक अधिक आयु वाले व्यक्ति से कर डाला है। वर और पुत्री की जोड़ी में कोई समानता नहीं, परन्तु वे और करते भी क्या? उन्हों ने तो चाहा था कि इनकी पुत्री किसी योग्य वर से ब्याही जाये परन्तु दहेज में देने के लिये योग्य वर पक्ष वालों की मांग के अनुसार उन के पास धन तो था नहीं, इस लिये जवान बेटी पर उठती हुई निर्दयी समाज की काट खाने वाली उङ्गलियों से बचने के लिये उन्हों ने उसे अधिक आयु वाले वर से ही ब्याह डाला, कि कहीं कन्या के पवित्र आँचल पर समाज में फैली हुई

गंदगी से प्रभावित हो कर कोई दाग़ न लग जाये। यदि ऐसा हो गया, तब तो युग युगान्तर तक हज़ार बार गंगा स्नान करने पर भी उसे धोया न जा सकेगा। और इसी भय से व्याकुल हो कर उन्हों ने अपनी पुत्री के जीवन को समाज के अन्याय की धधकती हुई भट्टी में झोंक दिया। इसी प्रकार के सामाजिक त्रास की शिकार हुई एक भील ललना का क्रन्दन इस गीत में देखिये—

मां, मने डोहा ने परणावी रे
डोहा ने गोंदड़ी नो घणो भावरे
लेरे डोहा सुंथा सुंथा लेरे डोहा सुंथा सुंथा

—[मां ने मुझे बूढ़े वर से ब्याह दिया।
बूढ़े को चटाई का बड़ा चाव है।
ले रे बूढ़े सड़ी गली चटाई ले!]

परन्तु इतना कुछ होते हुए भी मां-बाप एक बार जिस व्यक्ति के पल्ले अपनी पुत्री का जीवन बांध देते हैं, चाहे फिर वह कैसा भी क्यों न हो परन्तु विवाह हो जाने के पश्चात् वह केवल उसी को अपना एक मात्र भगवान समझती हुई जीवन पर्यन्त उसी की सेवा और भक्ति में लीन हो कर एक दिन अपना सूना परन्तु फिर भी अपनी महान चरित्र-स्मृति का बे-दाग़ आंचल इस निर्दयी समाज की आंखों के सामने ही अपने बेजान शरीर पर छोड़ कर इस संसार से सदा के लिए लोप हो जाती है, एक गीत में प्रीतम भक्ति से ओत-प्रोत पंक्तियों में भारतीय नारी के ऐसे ही पावन चरित्र की सुन्दर झांकी देखिये—

पूस मास पिया बरत तुम्हार
मैं बरती पांचों अवतार

न्हाय खोरि कै देहुँ असीस
जीवहुँ कन्त तुं लाख बरीस

—[पूस मास तो हे पिया ! तुम्हारे लिए मेरा ब्रत रखने
का समय है।
हां साजन ! देखो मैं तुम्हारे लिये पांचों अवतारों
का ब्रत रखूंगी।
और फिर नहा पहन कर अपने हृदय से यही
प्रार्थना करूंगी।
कि मेरा प्रियतम लाखों वर्ष तक जीवित रहे।]

यही हैं भारतीय नारी के हृदय में जन्म ले कर उसके कण्ठ से निकलने वाले वह अनश्वर भाव जो प्रियतम-भक्ति में ओत-प्रोत उसके महान चरित्र की प्यार में डूबी हुई महिमा का सजीव चित्र इस प्रकार के लोक-गीतों के रूप में अंकित करके हमें अपने आप पर गर्व करने की प्रेरणा दिया करते हैं और इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि यदि इनका प्रचार किया जाये तो जगत की सम्पूर्ण मानव जातियों का स्तब्ध कर डालने की क्षमता भी यह गीत अपने आप में रखते हैं। जाने कितनी बार सुना है यहां की नारी के ऐसे तपस्वी गीतों को,……… वैराग्य से भरपूर इस प्रकार की स्वर-लहरियों को। परन्तु यह कुछ ऐसी डोरियां हैं, जिनका कोई ओर छोर नहीं।……युग-युगान्तर से चली आ रही इस देश की कुछ ऐसी परम्पराएँ हैं जिनके प्रति अनेक बार सुन कर भी उसे अधिक सुन पाने की लालसा हमारे हृदय में शेष ही रह जाती है।

बड़ी बड़ी क्रांतियां आईं,..........दिल हिला देने वाले तूफ़ान उठे। इन से विचलित होकर अनेक बार हमारे देश के समाज का रूप टूटा है,..............और प्रत्येक ऐसी घड़ी में एक नवीन सामाजिक आदर्श की स्थापना हुई है। किन्तु कुछ परम्पराएँ ऐसी हैं कि बड़े-बड़े तूफ़ानों की ठोकरें भी सह जाने की क्षमता उन में होती है। तूफ़ान की निर्मम ठोकरें उनका कुछ बिगाड़ नहीं पातीं,........थक जाती हैं......और चली जाती हैं।

ऐसी ही बे-जोड़ परम्पराएँ तथा सजीव तत्व भारतीय आचरण और संस्कृति को आज तक सहारा देते आये हैं। और भारत ही क्यों, अपितु समस्त पृथ्वी-खण्ड पर बसने वाले मानव के जीवन से ऐसी ही परम्पराओं का एक गहरा सम्बन्ध चला आ रहा है, परन्तु भारत की मिट्टी पर जन्म लेने वाली नारी ने अपनी जो छाप इस प्रकार की परम्पराओं पर अङ्कित की है, उसकी महिमा ही अनोखी है। शेष संसार उसके तेज को सहन कर पाने में सदा ही हीन रहा है।

बड़े पुराने समय की बात है, जब भारत में नारी को समाज का सर्व-श्रेष्ठ आदर प्राप्त था। किन्तु वह जमाना जब बदला तो इस आदर का भी अभाव हो गया। पुत्र की अपेक्षा पुत्री का जन्म लेना खोटे भाग्य की निशानी समझा जाने लगा। पुत्रियां मां बाप के लिये भार स्वरूप दिखाई पड़ने लगीं। रामायण काल में जो आदर मानव वर्ग के इस अङ्ग को प्राप्त था वह महाभारत काल के पश्चात आकर धुँधला पड़ गया। दहेज प्रथायें चल उठीं......भरी सभाओं में कन्या पक्ष वालों की

पगड़ियाँ उछाली जाने लगीं। और नौबत यहाँ तक आ पहुँची कि ऐसी ही कुछ एक अन्य कुरीतियों का और समावेश हो जाने से विवाह आदि सुमंगल परम्पराएँ एक कुशल व्यापार का रूप धारण कर गईं।

ऐसी स्थिति में कन्याएँ निर्धन माता पिता के लिये एक अत्यन्त गम्भीर समस्या तथा असहनीय अभिशाप बन कर रह गईं। समाज उन के अस्तित्व को बचती हुई दृष्टि से देखने लगा। ग़रीबी के बीच कन्या का जन्म दर्द भरे जीवन की एक तड़पती हुई टीस बन कर चमक देने लगा। और ऐसी स्थिति के बीच घिरे हुये दुखिया मानव ने अपनी यह धारणा बना ली, कि कन्या को जन्म देने के बराबर महा पाप इस संसार में और कोई नहीं है।

यह है मानव के उस पहलू का स्वरूप जो वास्तव में अभागा है। सामाजिक दोषों के आजाने से ही उसका यह स्वरूप इतना अभिशप्त बन बैठा है। किन्तु एक दूसरा पहलू भी है, और वह है उसी नारी का अस्तित्व, जो आज सैंकड़ों वर्षों से इस प्रकार के अभिशापों का मुकाबिला करती चली आ रही है। समाज की कठोर से कठोर चोट को भी उसने आंखें मूंद कर अपनी कोमल सी छाती पर झेला है.......उसके निर्मम से निर्मम आघात को भी सह पाने में वह सदा समर्थ रही है। कौन सा शस्त्र ऐसा है जिसे समाज ने उसके दुर्बल से अस्तित्व को उखाड़ फैंकने के लिए प्रयोग नहीं किया। किन्तु यह भारत की ही महान् नारी है, जिसे उसके दुर्गम पथ पर विचलित कर पाने में समाज सदा हारा है, और इस जगत के समक्ष उसने पहली बार

यहां अपनी सब से बड़ी शिकस्त खाई है, कि जाने किस कठोर पदार्थ की बनी इस नारी को परास्त कर पाने में वह समर्थ नहीं हो सका।

भले ही समाज उसे निरन्तर अपनी कुदृष्टि से देखता रहे, परन्तु यह वह नारी है, जो उस के प्रत्येक नीच से नीच प्रहार को सहते हुए भी कभी कभी महारानी दुर्गा और लक्ष्मी जैसी वीरांगनाओं को जन्म दे कर उसके मुख पर एक ऐसा तमाचा लगा देती है, जिससे विचलित हो कर समाज का सिंहासन डोल उठता है। और वह फटे २ नेत्रों से घबराया हुआ उसकी ओर निहारने लगता है।

पुत्रों के साथ साथ भाग्य की हीनता की निशानी समझी जाने वाली ऐसी ही कन्याओं को भी जन्म देकर यहां की नारियां प्रत्येक पग पर समाज के अनेक दुष्ट प्रहारों की चोट को अपनी दुर्बल छाती पर रोकती हुई एक दिन उसके नेत्रों के समक्ष ही जगत-जननी का रूप धारण कर लेती हैं। तब थकन की उस शान्त घड़ी में,……पराजय की उस कसकती हुई बेला में,…हारा हुआ समाज,…उसके चरणों में आ गिरता है, परन्तु विशाल हृदय की वह स्नेहमयी देवी फिर भी उसे कुछ नहीं कहती,……उस से कोई शिकायत तक नहीं करती।

आज ही नहीं, अपितु इस देश के बीते हुये युग की ओर झांक कर देखिये,……और जहां तक आपकी दृष्टि पहुँच सकती है वहां तक देखिये, परन्तु इस महिमा-मयी नारी का स्वरूप हर स्थान पर आप को ऐसा ही मिलेगा। पहले वह एक

कन्या के रूप में समाज के दिये गये प्रत्येक अपमान को पी पी कर पलती है, और विवाह हो जाने के पश्चात् जब वह प्रियतम की दासी बन कर अपने माता पिता के आश्रय से छूट जाती है। तब फिर प्रियतम ही उसका सर्वस्व होता है। और उसी के साथ हंसती बोलती वह अपने शेष जीवन को उसी की सेवा और आश्रय में सौंप देती है।

फिर समय आता है तो वह एक मां का रूप धारण करती है, ऐसी अवस्था में जब पुत्र के साथ साथ प्रायः वह किसी कन्या को भी जन्म देती है। तब उसे लगता है, कि उसने अपनी कोख से जिस जीवन को भी जन्म दिया है, इस पतित समाज के लिये वह एक हीन-वस्तु है, जिसे उससे प्रभावित संसार मानव के पापों का एक असहनीय परिणाम समझता है। किन्तु क्या वह ऐसे अभिशापों से भयभीत हो कर अपने उफनते हुये वात्सल्य की धारा को बहाने में कभी संकोच कर जाती है ? नहीं,""कभी नहीं, समाज के प्रत्येक आरोप को सहती तथा उसकी हर उपेक्षा से टकराती हुई वह उस पुत्री को भी अपने स्नेह का उतना ही भाग देती है, जितना कि एक पुत्र को !

इतने बड़े संसार से टक्कर ले पाने की क्षमता केवल नारी के जीवन में ही निहित होती है, और भारत की नारी तो अपने महान अस्तित्व द्वारा इस कथन की पुष्टि करती है। यहां कहीं भी ऐसा उदाहरण नहीं मिलता, कि समाज के अन्याय के समक्ष वह कभी झुक पाई हो। भले ही समाज ने उसके साथ कोई न्याय नहीं किया और उसका मानवीय अधिकार भी कठोरता पूर्वक उसने उससे छीन लिया परन्तु इस से उस की महिमा में कोई भी अन्तर

नहीं आया। दुनियां के सामने आज भी उसकी शान उसी प्रकार जाग रही है, जैसी कि कभी आदि युग की सब से पहली नारी के जीवन में जाग उठी थी। आज भी उसके स्वरूप के साथ वही स्नेहमयी धारा अपनी उसी निरन्तर गति से बहती चली आ रही है। समाज का कठोर से कठोर प्रयत्न भी उसके प्यार की इस धारा को कभी रोक नहीं पाया।

इसका एक विशेष कारण है, जिस से प्रभावित हो कर मानव को अपनी तनिक सी झपट से ही चूर चूर कर देने वाला समाज, भारतीय नारी के एक विशेष अस्तित्व के सामने निरन्तर हार खाता चला आया है।

भयानक से भयानक नदी यदि चाहे तो अपने तूफानी वेग से हजारों लाखों गांवों को उजाड़ सकती है, अपने ही जल से सींच कर जवान किये हुए किनारे के करोड़ों वृक्षों को उखाड़ कर बरबाद कर सकती है, तथा यह भी सम्भव है कि कठोर से कठोर किनारों को तोड़ फोड़ कर वह अपने लिए एक नया रास्ता भी बना सकती है, परन्तु ऐसा सम्भव नहीं हो सकता, कि इतनी शक्तिशाली नदी अपने स्रोत को मिटाने में भी समर्थ हो सके। स्रोत के निकट तो नदी की शक्ति सदा ही क्षीण रहती है। स्रोत यदि चाहे, तो अपने जल को रोक कर नदी की महान शक्ति का ह्रास कर भी सकता है, परन्तु नदी में इतना साहस कहां कि वह अपने स्रोत को किसी प्रकार भी नष्ट कर सके। स्रोत के मिट जाने पर फिर उसका अपना अस्तित्व ही कहां रहेगा ?

नारी का रूप ही इस जगत का आदि-स्रोत है, और जब जगत ने ही अपनी कोख से समाज को जन्म दिया है; फिर

जगत और उसके समाज में इतनी सामर्थ्य कहां कि वह अपने आदि-स्रोत को कभी मिटा सके,—बिल्कुल उसी प्रकार जैसे एक नदी अपने स्रोत को नहीं मिटा सकती।

किन्तु अपने स्रोत की दी हुई शक्ति में जगत और उसका समाज जब खो कर बह जाते हैं, तो वह इतने शक्तिशाली हो जाते हैं कि अपनी अथाह शक्ति का अनुमान नहीं कर सकते। ऐसी अवस्था में एक अबला नारी तो क्या मानव की बड़ी से बड़ी ताकत भी उनका सामना नहीं कर सकती तथा उनकी कठोर ठोकरों से विचलित हो कर अपने आप को मिटा डालती है, परन्तु नारी जब ममता और प्यार का रूप धारण कर लेती है और इस जगती का आदि-स्रोत बन जाती है, तब यदि मानव को अपनी एक ही ठोकर से चूर-चूर कर सकने वाला अभिमानी समाज दानवता के मद में अपने आप से भूला हुआ नारी के इस स्वरूप से टक्कर लेने लगे, तो उसे सफलता कैसे प्राप्त हो? वहां तो उसे हारना ही होगा।

संसार में जहां कहीं भी नारी के बीच उसकी ममता और प्यार की छाया जब कभी भी जागेगी वहां तो प्रत्येक स्थान पर उसे मुंह की ही खानी होगी। आज तक ऐसा ही होता आया है। यह एक परम्परा सी बन गई है। परन्तु भारतीय नारी ने इस परम्परा को एक विशेष प्रकार से निभा कर अपना जो अविस्मरणीय उदाहरण इस दुनियाँ के सामने उपस्थित किया है, उसने दुनियाँ के सामाजिक इतिहास को स्तब्ध कर के रख दिया है।

वैसे तो भारत की नारी के जीवन का सारा इतिहास ही गौरव-मय है। हर स्थान पर वह संसार भर की नारी जाति के लिये अभिमान का विषय बन कर खड़ी हुई है। यह कोई

काल्पनिक बात नहीं और न ही इस में किसी प्रकार के गम्भीर अपनत्व के भाव ही प्रदर्शित करने का प्रयोजन है, बल्कि यह तो एक साधारण सी बात है, जिस पर अधिक गहराई में खोने की भी जरूरत नहीं, क्योंकि यह सब सत्य है, और सत्य भी ऐसा कठोर, जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

विदेशियों का इतिहास तथा उनका साहित्य खोजने से हमें भारत की नारी के जन्म से लेकर मृत्यु तक के जिस महान आचरण की झांकी वहां देखने को मिलती है, उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत ही नहीं अपितु संसार भर ने भारत की नारी के अस्तित्व पर सदा गर्व किया है।

आज इस विषय को लिखते हुए कई वर्ष पहले की पढ़ी हुई एक विदेशी कवि की यह पंक्तियां याद आ गई हैं:—

चूं ज़ने हिन्दू कसे दर आश्की मर्दाना नेस्त।
सोख्तन बा मुर्दाशम्मा कारे हर परवाना नेस्त।

"[हिन्दू नारी ही प्रेम निभाने में सब से बहादुर निकली है। क्योंकि परवानों में भी बुझे हुये दीपक पर मर मिटने का साहस नहीं है]"

भारतीय नारी ने विदेशियों के दिलों में भी अपने लिये जो उच्च-श्रद्धा प्राप्त की है, उसका उदाहरण इन उपरोक्त पंक्तियों में स्पष्ट दीख पड़ रहा है। वह एक ऐसा परवाना है, जिसने अपने दीपक (प्रियतम) की सजीव लौ के साथ जी कर जीवन का सुख यदि प्राप्त किया है तो उसके बुझ जाने पर अपने आपको उस पर मिटा कर जलते हुए दीपक पर मिट जाने वाले शलभों को

बेजोड़ कहलाने वाली परम्परा को मात कर के जगत के समक्ष अपना एक अनुपम उदाहरण स्थापित किया है।

जीवन के हर मोड़ पर उसे अग्नि-परीक्षा देनी पड़ती है, किन्तु यह उस महान पदार्थ की बनी हुई है, जो अग्नि के सन्ताप से राख नहीं बन जाती, अपितु कुन्दन बन कर अपनी तेज पूर्ण आभा से दुनियां को चकाचौंध करती हुई उसके बीच से फिर सदेह निकल आती है, और यदि मिटती भी है तो भी अपनी अनुपम चरित्र-स्मृति को इस धरती के कण-कण पर अंकित करके नारी वर्ग के मस्तक को इस संसार में सदा के लिये ऊँचा कर जाती है।

वैसे तो इस देश की नारी का सारा जीवन ही चरित्र की महानता से कूट-कूट कर भरा हुआ है, किन्तु प्रेम-पद को प्राप्त हुई इस ममतामयी देवी के प्यार का तो वाल्मीकि, कालिदास, तुल्सी, तथा सूर सरीखे महा कवि भी भली प्रकार बखान नहीं कर पाए। इसके प्यार की परम्परा ही ऐसी है, जिसे बखानना तो दूर की बात, उसे पूरी तरह अनुभव करना भी किसी की सामर्थ्य से परे की बात है। प्यार की भावनाओं का बखान तो एक प्रियतमा ही कर सकती है। कालिदास आदि महान कवि भी इस महान परम्परा की चरम परिणति तक फिर कैसे पहुँच पाते ?

यही वह महान परम्परा है जिसकी अनश्वर छापें युग युगान्तर से आज तक इसके अस्तित्व के साथ जुड़ी चली आ रही हैं। यहां की प्रत्येक नारी के हृदय में इनका जन्म होता है जिनकी नियत आधार पर निर्धारित अपनी-अपनी एक अलग २

कहानी होती है। जाने कितनी कहानियाँ इस त्याग और उत्सर्ग की आज तक जन्म पा चुकी हैं। इनका कोई हिसाब नहीं। यह अगणित हैं। और एक ऐसी डोरी के साथ बन्धी हुई हैं, जिस का कोई ओर छोर नहीं। इस के हृदय से उठने वाली प्रत्येक हूक के साथ इनके तार बँधे हैं। साहित्य के पृष्ठों पर इनके मोती बिखरे पड़े हैं। लोक कथाओं में इन के भण्डार मिलते हैं, और ग्राम-गीतों की सीधी-सादी पंक्तियों में इन के सजीव दर्शन प्राप्त होते हैं।

इस देश की नारी चाहे शिक्षित हो या अशिक्षित, शहरी हो या ग्रामीण, परन्तु उसके प्यार का इन भेदों से कोई सम्बन्ध नहीं होता। वैसे तो प्रेम का स्वरूप संसार भर की सभी नारियों में समान ही निहित होता है। किन्तु एक भारतीय नारी का प्यार समान रह कर भी एक विशेषता लिये हुये है। यहाँ की ग्रामीण नारियों में तो इसका और भी अधिक तथा सबल रूप देखने को मिलता है।

ग्रामीण महिलाओं के हृदय में जहां पति के लिये अपूर्व पूजा देखने को मिलती है, वहां नेत्रों से आंसुओं के सावन भी तनिक सी ठेस लग जाने पर बरसते हुये दीख पड़ते हैं। प्रियतम के प्रति अपूर्व भक्ति तथा उस में घुल मिल जाने वाले आंसू ही उसके जीवन में प्यार का हृदय-स्पर्शी दृश्य उत्पन्न करते हैं। यही विशेषता है भारतीय नारी के प्यार में, जिसके दर्शन इस देश की सीमाओं से निकल कर कहीं अन्यत्र देखने को नहीं मिलते। यहाँ ही इसका सजीव रूप देखने को मिलता है।

गीतों में विरह

प्रेम के दो ही मुख्य रूप होते हैं, पहला मिलन और दूसरा वियोग, परन्तु मिलन से वियोग की परम्परा कहीं अधिक लम्बी और गहरी है।

मिलन के उपरान्त प्रेम की लीला समाप्त हो जाती है। यदि वह कभी उठना भी चाहे तो मिलन की वह रही मद भरी सरिता का स्पर्श पा कर वह फिर गिर जाती है। बिल्कुल उसी प्रकार जैसे जल के मिल जाने पर किसी प्यासे की प्यास बुझ जाती है और फिर बाद में उसे जल पीने की कोई इच्छा नहीं रहती। बिल्कुल इसी तरह मिलन आ जाने पर फिर प्रेम की इच्छा नहीं रहती। परन्तु वियोग जब जागता है, तो प्रेम का स्वरूप क्षण प्रति क्षण व्यापक ही होता चला जाता है। और यही वह अवस्था है, जिसके बीच प्रेम की परीक्षा होती है।

जाने किस युग में सब से पहली बार मानव ने वियोग का दुःख अनुभव किया होगा। उस दिन के मानव की परिस्थितियों को कौन जाने ! क्योंकि परिस्थितियों से मजबूर हो कर ही मानव

को अपने सगे सम्बन्धियों का सम्पर्क छोड़ना पड़ता है अन्यथा वह कब चाहता है कि सब कुछ त्याग कर वह अपने आत्मीय जनों से दूर जा बैठे। परन्तु जब परिस्थितियों का सामना करते करते वह थक जाता है, तब एक ओर उसके अपने अस्तित्व का नाश तथा दूसरी ओर विलगता का जीवन, यह दो ही मार्ग उससे छुटकारा पाने के लिये उसके समक्ष शेष रह जाते हैं। और जब स्वभावानुसार वह अपने अस्तित्व का नाश नहीं चाहता, तब विलगता ही उसे अपनानी पड़ती है।

यूं तो प्रत्येक प्रिय व्यक्ति या वस्तु का वियोग दुखदाई ही होता है, परन्तु अपने प्रियतम का वियोग एक प्रियतमा के लिये दुख की चरम सीमा तक पहुँच जाता है। हालांकि वह अपने इस दुःख को किसी से जाकर नहीं कहती, परन्तु रयन की मौनता में जब गृहस्थी के कार्यों से निवृत्त होने के पश्चात् वह अपने शयनागार में प्रवेश करती है, तो प्रियतम से सूनी सेज देख कर उसका मन भर आता है वह बिलख उठती है। परन्तु किस से कहे वह अपने इस दुःख को जाकर। लोक-लाज के भय से पूर्णतया मौन बनी रहती है, और अपने दिल में लगी हुई विरहाग्नि को शान्त करने के लिये धीरे से गा उठती है, कि गीतों के रस में भीग कर ही उसके जलते हुए हृदय को कुछ देर के लिए शाँति मिल जाये और वह भूल जाये कि उसे कोई दुख भी है। विरह के ऐसे ही अनेक गीतों का अब हम अगले अध्यायों में अध्ययन करने जा रहे हैं,

कागा सब तन खाईयो,
चुन चुन खइयो माँस ।
दो नयना मत खाईयो,
मोहे पिया मिलन की आस ॥

विरह की अग्नि जब मानव के अन्तर में सुलग उठती है, तो उसे संसार नीरस सा लगने लगता है। विरह के कठोर आक्रमण उसके धैर्य और सन्तोष के बांध को उखाड़ फेंकते हैं; और तब एक ऐसी अवस्था आ जाती है, जब विरही या विरहिणी के हृदय की गति का पार कोई नहीं पा सकता। क्योंकि उसमें मानव की छटपटाती और तड़पती हुई आत्मा की दिल हिला देने वाली कसक भर जाती है। उसमें ज़िन्दगी के ठुकराए हुए आँसू छलकने लगते हैं, जो नेत्रों में अंगारों की भांति प्रत्येक घड़ी चटखा करते हैं। हृदय लगता है,……मानो पत्थरों के नीचे दबा पड़ा है,…………उसमें दर्द की लपक इस प्रकार उठती है, जैसे काली घटाओं के बीच से विद्युत की कौंध।

विरह वास्तव में प्रेम का जागरण होता है। विरह में ही प्रेम का सजीव स्वरूप उजागर होता है। जीवन में जब भी विरह जागता है, तो उसका क्षेत्र इतना व्यापक हो जाता है, जिसके बीच भटक कर मानव को अपनी सुध-बुध खोनी पड़ती है। सिवाए प्रियतम के ध्यान के उसे कुछ भी याद नहीं आता, ...सारे संसार को बिसार कर वह केवल एक उसी की लौ में लगा रहता है।

मानव कब चाहता है इस संसार में,..........कि उसका प्रियतम एक पल के लिये भी उस से अलग हो! किन्तु परि-स्थितियाँ बलवान होती हैं, इसलिए लाख उपाय करने पर भी कभी कभी ऐसा हो ही जाता है। परस्पर मिले हुये दो हँसते खिलते हृदय बीच से टूट कर अलग अलग हो जाते हैं। और उनकी यह विलगता इतनी असीम हो जाती है, जहां से एक टूक अपनी व्यथा दूसरे को सुनाने के लिये व्याकुल रहता है, परन्तु सुना नहीं सकता। एक पक्ष दूसरे को देखने के लिये तरसता है.........छटपटाता है..........गिड़गिड़ाता है, परन्तु अन्तर इतना महान होता है कि उसे पाटा नहीं जा सकता।

ब्रज-भूमि की एक नारी को देखिए, जिसका प्रियतम भरी बरसात में उससे बिछुड़ कर परदेश चला गया है। अपने मन की पीड़ा को वह रोक नहीं पाती और अपनी सखी से कहती है—

सवन में मेघा अति बरसे
निकर कित जाऊँ मैं घर से

सखी कोई जाय कहो पिव से
कि कामिनि बिन दर्शन तरसे

—[सावन में बादल बहुत बरस रहे हैं,
ऐसे में, मैं घर से निकल कर कहां चली जाऊं।
हे सखी ! तुम ही मेरे प्रियतम से इतना जा कहो,
कि तुम्हारी प्रिया, तुम्हारे दर्शन के लिये तरस रही है।]

विरह को किसी का भय नहीं होता। यह तो बे-लाग मानव के अन्तर से बुरी तरह चिमट जाता है, और उसे अन्दर ही अन्दर घुन की तरह खाता रहता है। बड़ा दुःखदाई होता है यह विरह! फिर भी इसकी बेड़ियों में जकड़ा हुआ मानव इसका परित्याग करना नहीं चाहता, ...वह इसी में खोया रहता है। दुःख के असीम प्रहारों को सहता हुआ भी, वह इसी में अपने जीवन का सुख ढूण्ढने की चेष्टा करता है,............ उसे याद आती है बीते हुए उन क्षणों की............जो उसने अपने प्रियतम के साथ खुशी के गीत गा गा कर गुजारे होते हैं। और उन्हीं का ध्यान करके उसकी आत्मा विभोर हो उठती है,.........थोड़ी देर के लिये उसके चोट खाये हुए हृदय को तसल्ली उसी मिल जाती है पर उस घड़ी भी उसके नेत्रों के सामने उसके प्रियतम का ही भोला भाला चित्र फेरियाँ लगाया करता है।

यही है एक सहारा,······ जो अत्यन्त व्यथा की बे-पीर बेला में भी मानव को जीवित रखता है,·······उसके प्राणों को थामे रहता है अन्यथा विरह तो काल का भी महा काल है, जिसके बीच मनुष्य मर तो जाता है, परन्तु फिर भी उसके शरीर से प्राणों का प्रवाह समाप्त नहीं हो पाता।

विरह का सम्बन्ध प्राणी-मात्र से है। संसार में जहां तक भी प्राणों की डोरियाँ फैली हुई हैं, वहां तक इसका अस्तित्व अवश्य पाया जाता है। और इसका जो रूप मानव समाज में देखने को मिलता है, उसकी कहानी तो अत्यन्त दर्द भरी है। यहां ही देखिए, कि एक नव-विवाहिता पंजाबी दुलहन है, जिसे उसका प्रियतम बड़े चाव से ब्याह कर लाया था। लाने से पूर्व उसने न जाने कितने प्रेम भरे वचन दिये थे अपनी इस प्रिया को,······ जाने कितनी कसमें खाई थीं उसने,···· एक क्षण को भी इसे अपने से अलग न करने के विषय में,····किन्तु वह चला गया,·······उसे अकेली छोड़ कर········और तबसे अब तक वह नित्य छत पर बैठ कर उसकी प्रतीक्षा किया करती है,·······और कहती है—

बदलां दी छाँवें पीड़ा डाह के परदेसिया वे
तेरियां करां मैं इन्तज़ारियाँ, बदलां दी छाँवें
गाऊँदियां ने कोइलां ते मोती पए वसदे ने
साडे चितनु ने आहोज़ारियां, बदलां दी छाँवें
बदलां दी छाँवें पीड़ा डाह के परदेसिया वे
तेरियां करां मैं इन्तज़ारियां बदलां दी छाँवें
मखणे दा पेड़ा बीबा, रखिया सी जोड़ के
चिट्टा जेहा गुड़ आन्दा, हटियों मैं लोड़ के

पूड़े मैं पकावां ते तूँ खावें कोल बह के
दिल विच तांघां मेरे भारियां बदलां दी छाँवें
बदलां दी छाँवें पीड़ा डाह के परदेसिया छाँवें
तेरियां करां मैं इन्तज़ारियां, बदलां दी छाँवें
किल्ली उत्ते टङ्गी चुन्नी, गुलनारी रंग के
अखियां 'च' कजला न पावां मैड़ी संग के
आले विच पई होई कंघी जदों दिसदी ए
सीने उत्ते चलन कटारियां, बदलां दी छाँवें
बदलां दी छाँवें पीड़ा डाह के परदेसिया वे
तेरियां करां मैं इन्तज़ारियां, बदलां दी छाँवें
किहा सी करार जीवें कर के निभावां गा
होण गियां जदों बरसातां तदों आवांगा
हुण बरसातां आके वेख लै वे दर्दिया
फैलियां सुगन्धां इत्थे सारियां बदलां दी छाँवें
बदलां दी छाँवें पीड़ा डाह के परदेसिया वे
तेरियां करां मैं इन्तज़ारियां बदलां दी छाँवें

—[हे परदेसी प्रियतम ! बादलों की छांव में आसन बिछा कर, देखो ! मैं तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हूँ, इन बादलों की छांव में।

जब कोकिलाएँ गाती हैं, तो लगता है, मानो मोती बरस रहे हों, परन्तु मेरे हृदय में तो शोक ही समाया है, इन बादलों की छांव में।

हे परदेसी प्रियतम ! बादलों की छांव में आसन बिछा कर, देखो ! मैं तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हूँ इन बादलों की छांव में।

हे भोले प्रियतम ! तुम्हारे आगमन को कितने यत्न से मक्खन का पेड़ा जोड़ कर मैंने रखा था,

और बाज़ार जा कर एक दुकान से तुम्हारे लिये सफ़ेद गुड़ मैं ढूँड कर लाई थी।
सोचती थी, कि मैं पूड़े पकाऊँगी और तुम मेरे निकट बैठ कर उन्हें खाओगे,

परन्तु हे साजन ! मेरे हृदय में आज कठोर निराशाएँ ही भरी हैं, इन बादलों की छांव में।
बादलों की छांव में आसन बिछा कर, रे परदेसी साजन,
देखो ! मैं तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हूँ, इन बादलों की छांव में।
गुलनारी रंग में रंगा हुआ अपना दुपट्टा मैं ने खूँटी पर लटका रखा है,
निगूड़ी लाज के मारे, मैं नेत्रों में काजल तक नहीं डालती हूँ।
परन्तु सामने के आले में पड़ी हुई कंघी जब दिखाई दे जाती है,
तो कलेजे पर कटारियां सी चलने लगती हैं, इन बादलों की छांव में।
हे परदेसी प्रियतम ! बादलों की छांव में आसन बिछा कर,
देखो, मैं तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हूँ, इन बादलों की छांव में।
वचन दे कर जिस प्रकार कहा था, कि उसे निभाऊँगा,
और जब भी बरसात आएगी, मैं तुरन्त चला आऊँगा।
हे निर्दयी साजन ! अब आ कर देख ले, कि बरसात आ गई है,
और हर ओर सुगन्ध-सौरभ छाया हुआ है, इन बादलों की छांव में।
हे परदेसी साजन ! बादलों की छांव में आसन बिछा कर,
देखो ! मैं तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हूँ, इन बादलों की छांव में।]

बिरहन की आवाज के प्रत्येक शब्द में हृदय को चीर डालने वाली टीस भरी होती है। और यह एक ऐसी आग है जिस की तपिश के मारे प्रत्येक घड़ी उसके स्वरों की पंक्तियाँ जला करती हैं। बिरह होता ही है ऐसा भयानक। इन्सान का हँसता और मचलता हुआ जीवन इस के शिकंजे में फंस कर सुनसान और बीहड़ जंगल के समान शुष्क और डरावना हो जाता है।

विरहिणी की आत्मा जब जलती है, तो वह दिन रात सुलगती रहती है। सिवाये उसके प्रियतम के उसकी इस विरहाग्नि को कोई भी शान्त नहीं कर सकता। कभी कभी तो यह अग्नि अपनी उस प्राकाष्ठा तक पहुँच जाती है, कि उसे अपने प्राणों की आहुति भी देनी पड़ती है। और वैसे भी प्रियतम के

बिना उस का जीवन एक मृतक के समान ही तो होता है। विरह में चुँगल में फंसा हुआ मानव इतना निर्भीक हो जाता है, कि संसार में उसे फिर किसी का भय नहीं रह जाता। वह अपने काल से भी फिर नहीं डरता।

विरह को प्रबलता का क्या ठिकाना ! एक बार यदि इस का घाव लग जाए, तो मानव के सामने फिर उसकी मौत भी अपना नग्न-स्वरूप ले कर चाहे क्यों न आ जाए, तो भी उसे कोई चिन्ता नहीं होती। ऐसी ही परम्परा है इस दुष्ट विरह की। प्रियतम के दर्शनों को छोड़ कर, एक विरही के लिये संसार में किसी वस्तु को पाने की लालसा नहीं होती। यदि प्रियतम की एक झलक दिखाने के बदले कोई उससे उसके प्राण भी मांगे, तो वह उसे भी संसार का सब से महान धन समझ कर सहर्ष स्वीकार कर लेता है। एक गीत में विरहिणी के विरह का एक ऐसा ही चरित्र उपस्थित है—

कागा नयन निकास दूँ
पिया पास लै जाय
पहले दरस दिखाय के
पीछे लीजो खाय

—[हे कागा ! मैं अपने नयन तो निकाल कर तुम को देती हूँ,
परन्तु इन्हें तुम मेरे साजन के पास ले जाना।
और पहले इन्हें पिया के दर्शनों से तृप्त करना,
इसके पश्चात् तुम इन्हें भले ही खा लेना।]

—:⊙:—

विरह रस की मार्मिकता से भरपूर पंक्तियां मानव की आत्मा के सच्चे दर्द और वैराग्य की प्रतीक होती हैं। वास्तव में विरह एक ऐसी साधना है, जिस की लौ में बैठ कर मानव अपना महान् से महान बलिदान भी दे सकता है। विरही के तो निर्बल और बुझे हुए हृदय में भी इतनी शक्ति निहित रहती है, कि वह अपने प्रियतम को पाने के लिये संसार से भी टक्कर लेने में नहीं झिझकता। उसे न तो दीन की चाह होती है और न दुनियाँ का मोह। उसे न फिर धन से भर-पूर कोषों का ही ध्यान रहता है और न ही लोक-लाज की खबर। संसार में कहीं भी जाकर देखिए, इस का प्रत्येक स्थान पर आप को समान रूप ही देखने को मिलेगा।

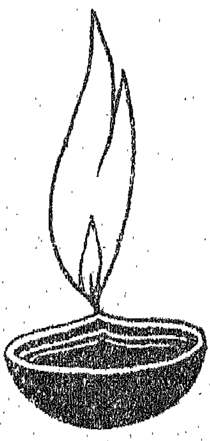
आंध्र देश में चलिए। नगर से दूर,……बहुत दूर,…… यहां के छोटे २ ग्रामों में आइये,……और उन लोगों के समीप बैठ कर देखिये, जो बिल्कुल अशिक्षित हैं, संसार के प्रति जिनका ज्ञान शून्य है,……जिन की अपनी दुनियाँ उनके अपने टूटे फूटे अस्त-व्यस्त घरों और थोड़े से खेतों तक ही सीमित है,……और सुनिए उन के भी हृदय की आवाज……जो उन की अपनी भाषा की है। तेलगू कहलाती है इन भोलेभाले लोगों की भाषा! आप को विदित होगा, कि साहित्य से दूर इन की टूटी फूटी मौखिक भाषा में भी प्रेम की पूजा उतनी ही कठोर है, जितनी कि एक कुशल साहित्यकार की सधी और मँजी हुई भाषा में। इन के प्रदेश के एक लोकगीत में एक वियोगी पुरुष का सजीव चित्रण देखिये—

एटुवंटि मोह मो कानि ओ
एल नाग इंतित अनग रादे।
मटु माय दैवमी मनसु
देलियग लेक मनल नेड़ बापे
नय्यो …. …. …. ओ मगुवा॥

कलिकि निन्नोड़ बासि नदि मादलु
नीरूपु कनुलु कट्टिन टुलु डुने।
चेलिये ने नोकटि दल चेद नन्न
नी सेयु चेलिमि तलपै युंडुने॥
सोलसि ने मेमैन ग्राय नियाकार
शोभन मै कनु पिंचुने।
पिलिचि पेरुन नो कटि बिलुच

बोलचिन नीदु पेरु मुदुग
दो चुने ....ओ मगुवा ॥

—[हे कामिनी ! तुम पर मेरा यह न्यारा मोह अनन्त है,
जब से तेरा वियोग पाया है,
तब से जिस वस्तु को भी देखता हूँ,
उस पर तुम्हारा ही रूप छाया हुआ दीखता है ॥
मन में जो कुछ भी उठता है,
वह सब कुछ तेरी प्रेम स्मृति के विचारों में ही परिवर्तित हो जाता है,
और जो कुछ भी आंकता हूँ,
उसमें तुम्हारी ही सुन्दर आकृति अङ्कित हो जाती है ॥
और यदि नाम से किसी को कभी पुकार उठता हूँ।
तो हे सुन्दरि ! मुख से तेरा ही नाम निकल पड़ता है ॥]



वाह रे मद-मस्त वियोग ! कितना मतवाला होता है तेरा रस । मानव के हृदय में जब तेरा प्रवेश हो जाता है, तो वह खो बैठता है अपने विचारों को । बस प्रियतम का चिन्तन ही उसकी सब से महान और श्रेष्ट सम्पत्ति बन कर रह जाता है फिर ! वियोग की पीड़ा के बीच ही उसकी बेचैन आत्मा के विचरने हेतु एक मात्र पवित्र ठिकाना रह जाता है उसके जीवन में !

और फिर इसी दर्द द्वारा कविता का जन्म होता है । यूं तो मनुष्य का समस्त जीवन ही काव्यमय होता है, परन्तु किसी दर्द की तड़प से व्याकुल हो कर हृदय से जो प्रवाह फूटता है, वही कविता का सब से महान् रस होता है । और

गीत की पंक्तियों में सम्बद्ध कर के जब उसे हृदय की दुनियाँ से खींच कर कण्ठ के सुरीले पन में छोड़ दिया जाता है, तो पाषाण तक के भी टूक कर देने की शक्ति उस में आ जाती है। ऐसी महिमा होती है एक वियोग भरे गीत की।

कविता किसी की मोल पर खरीदी हुई सम्पत्ति नहीं होती ; और न ही कोई कवि-विशेष मस्तिष्क के दाव पेचों में फँसा कर इसे अपने लिये सुरक्षित रख सकता है, अपितु इस का भण्डार तो संसार में इतना असीम है, कि यदि भू-मण्डल का एक एक कण भी इसे युग-युगान्तर तक समेटता रहे, तो भी इस का अन्त नहीं हो पाएगा।

कविता या गीत मनुष्य के अन्तर की शुद्ध वाणी होते हैं। सीमित साहित्यकारों और कवियों ने इन में भाँति भाँति के भेद उत्पन्न कर के इन की शुद्धता में एक महान अन्तर ला कर खड़ा कर दिया है। या यों कहिए कि अलंकारादि के चक्कर में फँस कर वे स्वयं ही मिथ्या-कल्पना में रमते हुए शुद्ध कविता के वास्तविक प्रतिबिम्ब से बहुत दूर हट गए हैं।

स्वतन्त्र कविता का महत्त्व अधिक है, क्योंकि इस पर किसी का प्रतिबन्ध नहीं होता और ना ही इस का निर्माण किसी व्यक्ति-विशेष को प्रसन्न करने के लिये होता है, अपितु इसकी उत्पत्ति तो स्वाभाविक ही हो जाती है, इस में रस होता है,........................प्राण होते हैं,..............................और जीवन का साक्षात् प्रतिबिम्ब होता है। किन्तु साहित्यिक कविताओं में इन सभी गुणों की प्राप्ति के दर्शन नहीं होते

आज कल की अलंकारों के फेर में घिस कर निर्मित हुई कविताएँ मनुष्य-मात्र से दूर उन थोड़े से लोगों के लिये ही रह गई हैं, जिन्हें अलंकारों का ज्ञान है। शेष लोगों की तृप्ति तो स्वतन्त्र कविताएं ही कर सकती हैं, जिन्हें साहित्य की मंजी हुई भाषा में लोकगीत कहा जाता है।

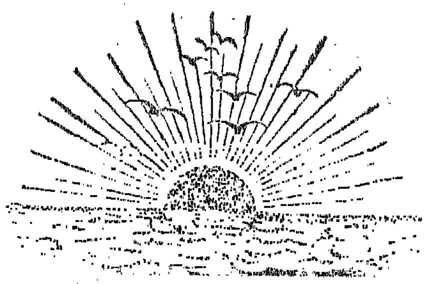
विरह रस के इन लेखों में हम ऐसे ही लोकगीतों को स्थान दे रहे हैं, ताकि इन के अवलोकन द्वारा इस महान रस की गम्भीरता को सीधे सादे ढंग से सत्य रूप में समझा जा सके।

अपने प्रियतम से दूर बैठी एक काश्मीरी यौवना के विरह का एक हृदय को चीर डालने वाला स्वर यहां प्रस्तुत है............ एक उदास और वियोग में लिप्त हृदय की आँसुओं में भीगी हुई पुकार है। और है भी तो ठीक ही, कि जो जिस के योग्य होता है, उसकी उसी में प्रीति होती है। जिस प्रकार पुष्प पर गुँजराने वाले भ्रमर को पुष्प से ही मोह होता है, और विष का कीड़ा सदा विष में ही जीवित रहता है, उसी प्रकार एक प्रियतमा का नेह भी अपने प्रियतम में ही निहित रहता है। उस का प्रियतम ही एक मात्र उस के रूप का सच्चा पारखी होता है; और जब वही समीप नहीं, तो फिर उस का रूप निहारे कौन!.....कौन सुधि ले उस की ....यूँ तो पुष्प के निकट कौआ भी आकर बैठ जाता है, और अपनी कठोर चोंच की ठोकर से एक ही टोल में उसे डाली से अलग करके फैंक देता है, परन्तु इस में नेह कहां! पुष्प को नेह तो भ्रमर के निकट ही प्राप्त हो सकता है, जो उसकी सुगन्ध में अपने आप को भुला कर गुनगुनाता हुआ धीरे धीरे उसके यौवन का रस-पान

करता है। उसी के निकट वह अच्छा लगता है। किसी काश्मीरी ललना के वियोग भरे इन मार्मिक स्वरों में जरा देखिए—

चोन हुई दुनियां
उछनवोल कुंग पोश
म्यों छेन उछन वोल
काँ कुंग पोश

—[सारी दुनियां तेरे रूप को,
देखने वाली है, रे केसर के फूल !
किन्तु मुझे देखने वाला,
नहीं है मेरे पास, रे केसर के फूल !]



विरह का विस्तार केवल दर्द और उसकी टीसों से विवश होकर फूट पड़ने वाले आँसुओं तक ही सीमित नहीं है, अपितु इस से भी कहीं अधिक कठोर इसकी आगे की परम्पराएँ हैं, जिन से दब कर कभी कभी तो मानव अपने रक्त से भी खेल उठता है। तब खून से लथ-पथ अपने जीवन की उन अन्तिम घड़ियों में एक वियोगिनी को अपने साजन की जब याद आती है, तो उसका क्रन्दन सुन कर पाषाण की छाती भी टुकड़े टुकड़े हो जाती है।

ऐसे ही हृदय-विदारक स्वर एक कबायली पठान महिला के कण्ठ से उसके विरही जीवन के अन्तिम क्षणों में फूट पड़ने

वाले इस 'लंडई' गीत में सुनिये, जिन्हें प्रेम वियोग में प्राण तजते समय वह अपने प्रियतम को सम्बोधित करते हुए गा रही है—

क़लम द-स्तो काग़ज़ द-स्पिनो
यो सो मिसरे पविनी स्ते यार ताले गमा

—[सोने की मेरी लेखनी है और रुपहला मेरा पत्र है,
जिस पर मैं अपने रक्त से भीगे कुछ गीत भेज रही हूं
अपने प्रियतम को।]



लोकगीतों में भावों की रेखाएँ स्पष्ट होती हैं। इसी लिये उनका मूल्य अधिक होता है। ब्रज की एक बिरहन को देखिए जिसका प्रियतम उसे अकेली छोड़ कर देश की सुरक्षा हेतु स्वयं लड़ने के लिये युद्ध में चला गया है। अकेलापन उस बेचारी से काटे नहीं कटता। पपीहे की बोलियों और मयूरों के गान से भी उसे अब दुःख अनुभव होता है। इन सब के प्रति उस के जीवन में कोई मोह नहीं है।

एक विरहिणी के लिये तो सब कुछ हेय है उस के प्रियतम के अतिरिक्त। मयूरों की मदमाती बोलियां और पपीहे के गान उसके जीवन में रस नहीं भर सकते, अपितु उन की चहचहाहट को सुन कर वह तड़प उठती है। उसे घबराहट सी लगती है इस

एकाकीपन में। याद करती है अपने दूर गये साजन को, आँसू बहाती है; और कहती है—

मेरो बालम रण में
मोर मचावत शोर
मेरो साजन लड़ रह्यो जंग
पपीहा क्यों मोई करि रह्यो तंग

—[मेरे साजन तो रण-भूमि में गये हैं,
और यहां मयूर शोर मचा रहा है।
मेरे प्रियतम तो युद्ध में लीन हैं
फिर यहाँ तू मुझे क्यों सताता है, रे पपीहा !



अब देखिये उस नारी को, जिसका प्रियतम कमाने के लिये किसी दूर देश में चला गया है। वह बेचारी क्या अनुभव करे कि उसी के पोषण के लिये तो उस के प्रियतम को परदेस में इतनी दूर जाना पड़ा है। उसे तो केवल प्रियतम को अपने पास रखने तथा उसके दर्शनों से अपने आप को तृप्त करने की ही लालसा है। इसीलिये तो कभी वह उसे लोभी समझती है, और कभी कुछ और। वह समझती है कि उसका प्रियतम उस से भी कहीं अधिक आसक्त केवल धनोपार्जन में है, परन्तु ऐसा समझती हुई भी वह अपना सम्पूर्ण नेह उसी की लौ में लगाए रहती है।

यही है एक भारतीय नारी के प्रेम का सजीव रूप। उसे

यह भी ध्यान रहता है, कि जिस देश में उस का साजन गया हुआ है, वहां अब कौन जाने वाला है! और जब कोई ऐसा यात्री उसे मिल जाता है, तो वह उस से भाई का नाता जोड़ कर अपने प्रियतम के लिये उस के हाथों अपना विरह-सन्देश पहुंचाने के लिये प्रार्थना करती है। यह एक स्वाभाविक सी बात है, जिस की झांकियाँ भारत के प्रत्येक ग्राम में, वहां की भोली भाली अनपढ़ नारियों के बीच स्पष्ट रूप में देखने को मिलती है। और यह भी एक सच्ची सी ही बात है, कि इस देश की नारी जब किसी पर-पुरुष से बात करती है, तो बात करने से पूर्व वह उस के व्यक्तित्व को अपने समक्ष एक भाई रूप में ही स्वीकार करती है।

जहाँ तक भारतीय नारी के चरित्र के विस्तार का प्रश्न है, वहाँ तक इस कथन के तनिक से भी अंश की उपेक्षा नहीं की जा सकती। मानवीय स्वभाव के ऐसे ही कठोर सत्य भारतीय लोकगीतों के प्राण हैं, और इसी आधार पर इन का स्थान साहित्यिक कविताओं से कहीं अधिक ऊँचा उठ जाता है। इन में छुपा हुआ दर्द मानव की आत्मा से निकलता है। इन के बोल अत्यन्त अस्त-व्यस्त होते हुये भी आत्मिक अंशों से भर-पूर होते हैं। निम्नलिखित गीत में एक विरहन के ऐसे ही प्राकृतिक मनो-भावों का अवलोकन कीजिए—

भारी भइले राम अंखियाँ
अमुआ मोजरि गइले
महुआ टपके निर्मोहिया
कत दिन बटिया

जोहिबे रे लोभिया
तुहूँ मोर भइया रे निर्मोहिया
हमरो सनेस ले ले
जइहे रे लोभिया
भारी भइले राम अँखियाँ

—[हे राम ! मेरे तो नेत्र भी भारी पड़ गये हैं,
आम्र-तरु पर बौर खिल उठा है।
महुआ भी टपकने लगा है,
कितने दिन की प्रतीक्षा,
अभी जोहनी पड़ेगी—रे लोभी बालम !
हे राम ! मेरे तो नयन भी थक उठे हैं अब !
हे रास्ते पर जाने वाले राही !
तुम तो मेरे भ्राता के समान हो।
मेरा एक सन्देश ले लो,
और उसे मेरे लोभी प्रियतम तक पहुँचा दो।
हे राम ! अब तो यह नयन भी हार चुके हैं।



अब लौट आइये पंच-नद की इस पावन-भूमि में, जिसे पंजाब कहते हैं,..........और जहाँ की मिट्टी से आज भी कभी कभी 'हीर', 'हीर' की सदाएं जाग उठा करती हैं।

प्रेम-पुजारिन हीर ने इसी पवित्र-भूमि पर जन्म पाया था,.........जिसकी वाणी में प्रेम के कंटकाकीर्ण मार्ग पर मिलने वाली ठोकरों का दर्द, फर्याद और चीत्कार भरा हुआ था। और जिस का अभागा प्रेम मिटती हुई आशाओं की एक जीती जागती तस्वीर था।

हीर पंजाबी लोकगीतों की आत्मा है। यहां के गीतों का अधिकाधिक भाग इसी महान महिमामयी नारी के प्यार की रौ में प्रवाहित है। हीर की दर्द भरी तान

जब किसी के मीठे स्वर से यहां के किसी वन में कभी गूँज उठती है, तो जंगल की बहारें भी मारे दर्द के तड़प उठती हैं। हीर का वियोग पंजाब के अनुपम लोकसाहित्य की एक महान सम्पत्ति है। जिसके आधार पर वह सदा के लिये अनश्वर हो गया है।

सैयद वारिस-शाह (पंजाबी लोक-कवि) ने हीर पर एक महान काव्य लिखा है। इसके अतिरिक्त भी अनेक कवियों ने हीर के प्रेम-चरित्र पर अपनी भाँति भाँति की सुन्दर काव्य-कृतियां लिखी हैं, परन्तु लोकगीतों के बोलों में इस का अलग ही शान है।

कहते हैं, कि एक बार हीर को अपने प्रियतम 'राँझे की बाट जोहते जोहते सांझ हो गई, किन्तु वह न आया। घबराई हुई 'हीर' तड़प उठी, और उसी व्याकुलता में वह अपने राँझे को खोजने के लिये चल पड़ी,............अन्धकार छाने लगा,........ आकाश पर घनघोर बादल उमड़ आये,............हीर चलते चलते थक कर चूर हो गई, परन्तु उसे राँझा न मिला।

कुछ देर पश्चात् ही जल की धारें भी आकाश से छूट उठीं, तूफ़ान सा आ गया,........किन्तु प्रियतम से मिलने को बेचैन हीर उस तूफ़ान में भी 'राँझा' .... राँझा, पुकारती हुई उन राहों में भटकती ही रही। अन्त में एक भरे हुये बह रहे बरसाती नाले ने हीर का मार्ग रोक दिया। वह उसे पार करना चाहती थी, कि शायद उस पार के वन में ही उसे उस का प्रियतम मिल जाय, परन्तु जल के कठोर वेग ने उस की सारी

आशाएँ मिटा दीं। हीर का हृदय यह देख कर बिलख उठा, और वह उस नाले को पुकार कर कहने लगी—

सुण वे नालेया डिट्ठेया भालेया
क्यों वगदाएं ऍन्हीं राहीं
अग्गे तां वगदा सी गिट्टे गोड्डे
हुण क्यों वगदाएं असगाहीं
एसे पत्तन मेरियाँ मझियां लंघियां
एसे पत्तन मेरियाँ .... गाईं
एसे पत्तन मेरा राँझा लंघेआ
मैं हीर तत्तड़ी दा साईं
मारू हा! किसे ग़रीब दी नालेया
ते तूं फेर वगे गा नाहीं

—[अरे ओ नाले सुन ! तू तो मेरा देखा हुआ है,
पहले तो तू टखने या घुटने तक ही बहता था,
किन्तु अब तूफ़ान क्यों बना हुआ है ?
इसी घाट से मेरी भैंसें गुज़रती थीं
और यहीं से मेरी गौएं पार होती थीं,
और यहीं से हो कर मेरा रांझा जाता था,
मुझ अभागिन का प्रियतम।
अरे ओ नाले ! किसी ग़रीब की हाय तुझे नष्ट भ्रष्ट कर डालेगी
फिर तू कभी न बह सके गा।]

लोकगीत किसी भी क्षेत्र का हो और चाहे जैसा भी हो, उसमें उस क्षेत्र के प्राकृतिक अंशों के दर्शन अवश्य ही प्राप्त होते हैं। निम्नलिखित गीत विरह रस का है, परन्तु इसके साथ साथ इसके शब्दों में से उस क्षेत्र के लोक-जीवन का सच्चा और प्राकृतिक अंग उभरता हुआ दिखाई दे रहा है।

पहाड़ी लोगों की जीविका का आधार मुख्यतः उन की भेड़ बकरियां ही होती हैं। इस गीत में उन का उल्लेख स्वाभाविक सी बात है। एक अपरचित व्यक्ति इसे कहीं भी सुन कर यह अनुमान भली प्रकार लगा सकता है, कि जिस विरहिणी की आत्मा की भी यह आवाज है, वह किसी पहाड़ी क्षेत्र की रहने वाली है।

विरह में जब एक भोली भाली ललना का हृदय जलता है, तो उस के बिलखते हुये करुण स्वरों को सुन कर पहाड़ों के कलेजे भी फट जाते हैं। धरती तक दहल उठती है। एक डोगरी ललना का विरह क्रन्दन देखिये—

तेरा लगदा मन्दा ओ गाद्दिया
तेरा लग .... दा मन्दा
निक्का नया .... छिल्लड़
पीछे छोड़ी गेआसु
घा पत्तर नईयों खन्दा ओ गाद्दिया
तेरा लग .... दा मन्दा
खत पटवारी मीकि लिखी नईयों दिन्दा
सौ सौ करेनियां छन्दा, ओ गाद्दिया
तेरा लग .... दा मन्दा
कोधे हथ भेजां अज सुरत सादड़ा
कोई पखरू भी नइयों जन्दा ओ गाद्दिया
तेरा लग .... दा मन्दा
तेरे बिना छिल्लड़ु घा नईं खन्दे
मरी सुक्की जन्दे, ढई ढई पौन्दे
सुकदा नईं दबरे दा बन्धा ओ गाद्दिया
तेरा लग .... दा मन्दा

—[हे साजन ! तुम्हारा विरह बड़ा बुरा लग रहा है,
हां प्रियतम ! सच मुच यह बड़ा अप्रिय लग रहा है।
छोटा सा जो बकरी का बच्चा है,
जिसे पीछे छोड़ कर तुम परदेस चले गये थे।

हां प्रिय ! उस ने घास तक खाना छोड़ दिया है।
हे साजन ! तुम्हारा विरह बड़ा अप्रिय लग रहा है।
पटवारी मुझे एक पत्र भी लिख कर नहीं देता,
सौ सौ खुशामद करती हूं रे साजन !
हां प्रियतम ! तुम्हारा विरह बड़ा अप्रिय लग रहा है।
आज किस के हाथ मैं तुम्हें अपने विरह का सन्देश भेजूँ।
आज तो कोई पंछी भी नहीं दीख पड़ता उड़ता हुआ।
हां प्रियतम ! तुम्हारा विरह बड़ा अप्रिय लग रहा है।
तुम्हारे बिना यह भेड़ बकरियां घास भी खाना नहीं चाहतीं,
मरी मरी जाती हैं, गिरी गिरी पड़ती हैं,
और मेरा कह कुटुम्ब का काम कभी समाप्त ही नहीं होता
है रे साजन !
हां प्रियतम ! तुम्हारा यह विरह बड़ा अखर रहा है
अब तो !



लोकगीतों के विरह रस में डूबे हुये संगीत भरे स्वर जब गूँज उठते हैं, तो पत्थर से पत्थर हृदय भी पिघल कर बह उठता है। इन्हीं के द्वारा हमारी आत्मा के तार हिलते हैं, जिन में खो कर मानव का भटका हुआ हृदय कुछ देर के लिये एक गहरी शान्ति का अनुभव कर पाता है। बुद्धि के चमत्कार से यह गीत भले ही अलंकृत न हों, परन्तु हृदय की सरलता तथा मन के सीधे सच्चे विचार ही इनकी विशेषता हैं। डुग्गर प्रदेश के एक अन्य गीत में एक विरहन के व्याकुल हृदय की प्रतिक्रियाओं का अवलोकन कीजिये —

जली बो जाए चम्बे फुल परदेसिया
जली बो जाए काले केस

जिन्हें कारन असें चम्बा लाया
ओ सजन......................परदेस

—[आग लग जाये इन चम्पा के पुष्पों को रे, परदेसी साजन!
और जल जायें मेरी यह काली काली केश राशियां भी!
क्योंकि जिसे मोहने के लिये हम ने यह चम्पा की पौध लगाई थी,
वह साजन तो अब परदेस गामी हो गये हैं।]



विरह की वाणी इतनी मार्मिक होती है कि यदि उस के स्वरों को परदेसी साजन सुन ले, तो वह तुरन्त सब कुछ छोड़ छाड़ कर अपनी प्रिया के पास चला आये। इतना खिंचाव भरा होता है एक बिरहन के गीत में।

यह जान कर भी, कि उसकी पीड़ा-युक्त फ़र्याद उस के साजन तक नहीं पहुँच पायेगी, वह निरन्तर अपने आँसुओं के वेग को रोकने के लिये गाती रहती है,................कि शायद गीतों की लहरों में ही उसका जी बहल जाये, ...और वह अपने आँसुओं को रोकने में समर्थ हो सके। ऐसा कर पाने में विरह से पीड़ित नारी स्वयं भले ही सफल हो जाती है, परन्तु उसके बिलखते हुए स्वर सुनने वालों

की आँखों को तो एक बार रो पड़ने के लिये अवश्य ही विवश कर देते हैं।

वास्तव में विरह के गीतों में प्रेम का असीम सागर भरा होता है। अनुभव की अथाह सम्पति से इनका प्रत्येक बन्द भरपूर होता है। कितना अनुराग उठता है, जब एक वियोग से पीड़ित ललना अपने दुःखे हुए स्वरों में कहती है, "उजड़े ग्राम तो फिर भी बस जाते हैं रे साजन! और खोया हुआ धन पुनः प्राप्त किया जा सकता है, परन्तु यौवन का धन जब एक बार चला जाता है, तो फिर कभी लौट कर नहीं आता।"

राजपूताना क्षेत्र की विरहन की ऐसी ही अवस्था का एक दर्द भरा गीत यहां प्रस्तुत है देखिये—

साँवण खेती भँवर जी! थे करी जे
हाँ जी ढोला! भादुड़े करयोछो नीनाण
सीटाँ की रुत छाया भँवर जी परदेस में जी
ओ जी म्हारा घणाँ कमाऊ उमराव
थारी पियारी ने पलक न आंवड़े जी
उजड़ खेड़ा भँवर जी फर बसे जी
हाँ जी ढोला! निरधन के धन होय
जोबन गये पीछे कना बावड़े जी
ओ जी थाने लिखूँ बारम्बार
जल्दी घर आओ जी क थारी धन एकली जी
जोबन सदा न भँवर जी, थिर रहे जी
हाँ जी ढोला! फिरती घिरती छाँय
पुल का तो बाया जी क मोती नीपजै जी

ओ जी थारी पियारी जी जोवे बाट
जलदी पधारो देस में जी

—[हे पिया ! श्रावण मास में तुम ने खेत बोये थे ।
और हे पिया ! भादों मास में तुम ने उन की निराई की थी,
किन्तु जब फल लगने का मौसम आया तो तुम परदेस चले गये ।
हे मेरे अधिक कमाने वाले साजन !
ऐसे विरह में तुम्हारी इस प्रिया की आंखें दुःख उठी हैं ।
सच मानो प्रियतम ! कि उजड़ा हुआ ग्राम तो फिर बस जाता है,
और हे प्राणाधार ! ग़रीबों के पास धन भी आ जाता है,
परन्तु जवानी जब एक बार चली जाती है, तो फिर लौट कर नहीं आती,
इसी लिये तो मैं तुम्हें बार बार पत्र लिख रही हूँ,
कि अब शीघ्र घर आओ, जहां तुम्हारी यह प्राण-प्रिया अकेली है ।
हे साजन ! यह यौवन भी भला कभी स्थिर रहा है ?
अरे प्यारे ! यह तो चलती फिरती छाया है ।
समय पर बोया हुआ मोती ही उत्पन्न होता है ।
अरे ! तुम्हारी यह प्रियतमा तुम्हें कब से निहार रही है,
इस लिये हे साजन ! अब तुम शीघ्र घर आ जाओ ।]

अधिक नहीं तो कम से कम एक विरहन के हृदय में यह अरमान तो अवश्य ही निहित रहता है, कि उसका साजन सावन तथा फाल्गुण के मस्त महीनों में तो उस से विलग न हो। परन्तु वह कहे किस से अपने हृदय की बात? कौन सुनता है उस की पुकार? दूर बैठे साजन तक अपना सन्देश पहुँचाने में जब कभी वह असमर्थ रह जाती है, तो फूल पर गुनगुनाते भौंरे को लख कर वह उसी से अपने मन की बात कह उठती है, ताकि विरह के असीम बोझ के नीचे दबे हुए अपने हृदय को कुछ देर के लिये हलका कर सके। वह उसे लालच देती है, कि 'हे भ्रमर! यदि तुम मेरे साजन के पास मुझ नसीबों-जली का यह सन्देश पहुँचा दो कि अब तो फाल्गुण मास आ गया है और तुम्हारी प्रिया तुम्हें निहार रही है, तो मैं तुम्हें खाने के लिये दूध और भात दूँगी,

यहाँ अनेक बन्धुओं के हृदय में यह शंका उत्पन्न होगी कि भौंरे को तो चखने के लिये फूलों का रस चाहिये, उसे खाने के लिये दूध और भात देना तो एक अस्वाभाविक सी बात है। और उन का ऐसा सोचना एक प्रकार से ठीक भी है, क्योंकि भौंरा दूध भात नहीं खाया करता।

परन्तु एक ग्रामीण और अशिक्षित नारी की दुनियाँ दूध और भात तक ही सीमित रहती है। फूलों के रस से उस का परिचय नहीं होता। तो फिर जिस चीज से जिस का जितना परिचय भी होता है, उसके विचार और भाव भी उतनी ही सीमा के बीच चक्कर लगाया करते हैं। एक ग्रामीण नारी तो साधारणत: यही समझती है कि मनुष्य जो कुछ भी खाता है, उन में सब से स्वादिष्ट और श्रेष्ठ पदार्थ दूध और भात का भोजन ही है, और इतना ही नहीं बल्कि उसकी यह लालसा भी रहती है कि यदि मेरा कोई प्रियवर मेरे यहाँ आये, तो उसे प्रसन्न करने के लिए मैं उसे यही भोजन खिलाऊँ, क्योंकि उस के विचारों में यही एक ऐसी वस्तु रहती है, जिसे वह भोजनार्थ संसार में सर्वश्रेष्ठ समझती है।

भगवान राम ने भले ही अपने महलों में प्रतिदिन अत्यन्त स्वादिष्ट और पौष्टिक फल खाये होंगे किन्तु विरहिणी भीलनी ने तो यह जानते हुए भी कि वह राजा राम हैं, उन्हें जंगली बेरों का ही भोजन कराया था ; क्योंकि वह बेचारी अन्य स्वादिष्ट फलों को क्या जानती ; उसके लिये तो जंगल की झाड़ियों से चुन चुन कर एकत्रित किये हुए वह बेर ही संसार का सब से मीठा भोजन थे।

बनवासी राम ने वन वन के बेरों में जो रस उस दिन अनुभव किया था उस की महिमा गाते गाते तो कवियों की लेख-नियाँ तक थक गई हैं। इसी प्रकार भौंरा भी भले ही दूध और भात में अपनी कोई रुचि न रखता हो, फिर भी एक प्रेमिका इन वस्तुओं को यदि श्रद्धा एवं भक्ति-पूर्वक उसे खाने के लिये दे तो उसमें निहित अत्यन्त मीठे रस का अनुभव वह भली प्रकार कर सकता है। देखिये तो! कितने श्रद्धा-पूर्ण शब्दों में ब्रज की एक बिरहन रस के लोभी 'भ्रमर' से कहती है—

तो को देबों रे भौंरा,
दूध भात खोरवाँ।
अरे, पिया आगे खबर जनाउ
कि फागुन आयउ

—[हे भ्रमर ! मैं तुम को दूँगी,
दूध भात और खुरचन का भोजन।
अरे ! यदि तू मेरे साजन के पास मेरा यह सन्देश
पहुँचा दे,
कि अब तो फाल्गुण मास आ गया है।]

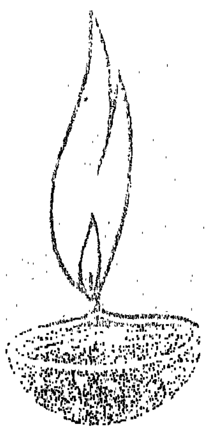
लोकगीतों के प्रति अनेक लोगों के विचार हैं कि इन में अनेक स्थानों पर ऐसे शब्द प्रयोग किये जाते हैं, जिन के लिये एक साहित्यकार की भाषा में कोई स्थान नहीं होता। परन्तु अपने हृदय के सीधे सादे भावों को मँजी और छनी हुई भाषा में व्यक्त करने के लिये ग्रामों के भोले भाले.........अशिक्षित लोगों के पास साहित्यिक तथा शुद्ध शब्द कहां से आयें? वे तो केवल आत्मा के उमड़ते-घुमड़ते विचारों में ही खोना जानते हैं। शब्दों और उनकी सजावट की दुनियाँ से इनका कोई विशेष सम्बन्ध नहीं होता। फिर भी इन के गीतों में कविता के मूल अथवा प्राकृतिक रस का पूरा पूरा अंश निहित रहता है।

तनिक बुन्देल-खण्ड के ग्रामीण समाज में आइये। ढोलक

बज रही है कहीं ! फाल्गुण का महीना आ गया है ना ! फागें गाई जा रही हैं—

यारी करी दिल जान के
दै पनमेसुर बीच
इतनी जा में खोटी करी
छोड़ गये अधबीच
छैल तेरे मेल होने ना

—[हृदय को परख कर ही यह प्रीति लगाई थी,
तथा ईश्वर को इसका साक्षी बनाया था ।
परन्तु इस में इतनी रुसवाई मिली ।
कि प्रियतम छोड़ गये अध-बीच
हे साजन ! क्या अब तेरे दर्शन कभी प्राप्त न होंगे ?]



एक विरहिणी के हृदय में उठने वाले दर्द और उस के भरी बहार में भी उजाड़ पड़े यौवन का सजीव चित्रण जितना प्राकृतिक लोकगीतों की रेखाओं में निहित मिलता है उतना साहित्य की परिधि में कम ही देखने में आता है ।

बुन्देल-खण्ड के सुप्रसिद्ध लोक-कवि 'ईसुरी' के विरह में भीगे हुये सरल तथा सीधे सादे गीतों में तो इसकी अलग ही छाया दृष्टिगोचर होती है । हालांकि शिष्ट समाज में इन गीतों के लिये कोई स्थान नहीं है, परन्तु बुन्देल-खण्ड के लोक-समाज में इनके स्वर इतनी दृढ़ता से बन्धे हुए हैं कि इनकी डोरियां को शिष्ट समाज की कड़ी से कड़ी आलोचनाएँ भी कभी काटने में समर्थ न हो

पायेंगी। देखिये तो सही विरह की प्रचण्ड ज्वाला में जलती हुई एक बुन्देल-खण्डीय ललना कहती है—

जब से भई प्रीति की पीरा
खुसी नई जौ जीरा
कूरा माटी भओ फिरत है
इतै उतै मन हीरा
कमती आ गई रक्त मांस में
बहौ द्रगन से नीरा
फूँकत जात विरह की आगी
सूकत जात सरीरा

—[जब से प्रेम का दर्द प्राप्त हुआ है,
तब से जी में सुख रहता ही नहीं।
और मिट्टी कंकर की भांति भटकता फिरता है,
मेरा यह हीरे की भान्ति का स्वच्छ हृदय !
रक्त मांस का भी अब तो अभाव हो गया है,
नयनों से अश्रु ही बहा करते हैं।
विरह की प्रचण्ड ज्वाला हर समय जलाया करती है,
और शरीर सूखता ही जा रहा है।



यह ठीक है कि लोकगीतों में शब्दों का सौन्दर्य नहीं होता परन्तु उस हार का क्या महत्त्व जिसे आबदार बनाने के लिये स्वर्ण का झोल चढ़ाने का प्रयत्न किया गया है। भीतर तो उसके मूल्य-हीन वस्तु ही भरी पड़ी है। यदि भीतर ही मूल्यवान वस्तु होती, तो उस पर झोल चढ़ाने की आवश्यकता कैसी? स्वर्ण तो सदा स्वर्ण ही रहता है।

यही गुण है लोकगीतों में भी है। शब्दों का सौन्दर्य यदि इन में निहित नहीं, तो न सही, परन्तु इन में रस तो होता है। और इसी लिये इन्हें अलंकारों के झोल की आवश्यकता नहीं। इसके बिना भी इन के प्राण नष्ट नहीं हो जाते,............इनका रस फीका नहीं पड़ जाता।

अपने रस की महानता को प्रामाणिक रूप में प्रदर्शित करने के लिये लोक गीतों को किसी विशेष अथवा गम्भीर बहस की आवश्यकता नहीं, अपितु यह स्वयं ही अपनी महानता के प्रतीक होते हैं, और इस बात से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि इन के शब्दों में कविता के प्राकृतिक गुणों का भण्डार समाया रहता है।

एक विरहिणी को देखिए जो अकेले पन में सावन के घन-घोर बादलों को देख कर बेचैन हो उठती है। वह जानती है, कि जो बादल यहाँ पानी बरसा रहा है, वही उस देश में भी जा कर पानी बरसायेगा, जहाँ मेरे पिया रहते हैं। वह यह भी जानती है, कि यह घटा न तो किसी की पुकार ही सुन सकती है, और न ही इसे बोलना आता है। अतः जब से उसे यह निश्चय हो गया है, कि पवन के झकोरों में बहती बहती यह श्याम घटाएँ उस के प्रियतम के देश में भी पहुँचेंगी, उस से रुका नहीं जाता। बदली किसी से कहे या न कहे, परन्तु एक बिरहन अपनी बात कह ही डालती है, कि हे घटा! भगवान के लिये अब तो तू उस देश की ओर अवश्य मुड़, जहां मेरे साजन रहते हैं।" इसी भाव का एक बांका प्रदर्शन निम्नलिखित गीत की पंक्तियों में देखिये—

अरे अरे कारी बदरिया
तुहईं मोरि बादरि
बादरि! जाई बरसहु वाहि देस
जहाँ पिय छाय

—[अरी ओ, काली घटा!
एक तू ही तो मेरी सखी है।
हे बादली! तुम उस देश में जाकर बरसो,
जहां मेरे प्रियतम बसे हैं।]

आत्मा की पुकार जब उठती है, तो नयन भर आते हैं। आंसू कभी किसी से शर्माते नहीं। उन्हें जब निकलना होता है, तो वे बे-झिझक निकल आते हैं। परन्तु एक बिरहन के आँसू जब उसके नयनों में बेचैन हो कर मचल उठते हैं तो उन्हें देख कर यह धरती भी लगती है जैसे फट पड़ेगी। एक गीत में वियोग से पीड़ित नारी का रुदन देखिए—

बे इलि एक हरि लायेनि दुधवा सिंचयेनि
आप हरि भए बनजारा बेइलि कुम्हिलानि
मिलहु रे सखिया सहेलरी मिलजुलि चलहुन
सखिया हरि जी की लावलि बेइलिया सींचि जगाहु

एक घरिला सींचीं नौरंगिया दूसरे घरिला बइलिया
आई गइ हरि जी की सुधिया नैन आँसू ढुरैं

—[मेरे प्रियतम ने एक लता लगाई थी, और उसे दूध से सींचा था,

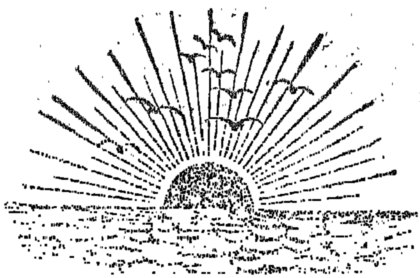
पर हाय ! प्रियतम तो व्यापारी बन कर चले गये और बेल सूख गई ।

अरी सखियो ! आओ मिलजुल कर चलें,

चलो सहेलियो ! अपने साजन की सूखती हुई बेल को जगाएं।

एक कलश से उसने नारंगी को पानी दिया और दूसरे से बेल को सींचा,

तभी साजन की याद आ गई, और नयनों से नीर बह उठे।]



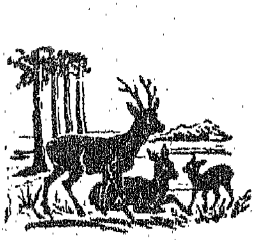
वियोग से पीड़ित नारी भले ही किसी भी सभा में क्यों न बैठी हो, और चाहे कोई भी कार्य क्यों न कर रही हो परन्तु उसे जब भी अपने प्रियतम की याद आ जाती है, तो उसके नयनों से नीर अपने आप ही बह उठते हैं। इन आंसुओं में उसके हृदय का प्यार तड़पता है, और एक ऐसा दर्द बहता है, जिस में उसकी घायल आत्मा का रुदन छुपा हुआ है। परन्तु इस रुदन में मौनता को ही प्रधानत्व प्राप्त होता है, क्योंकि चुप चाप रो रो कर समाप्त हो जाना ही एक विरही या विरहिणी के आँसुओं का प्रधान गुण है।

विरह के आँसू जब मानव के नेत्रों में छलक उठते हैं, तो उनकी छाया में उसकी आत्मा तड़पा करती है। और

जब वह विरह के इस प्रचण्ड सन्ताप को सह नहीं पाती, तो उस में से हूकें उठती हैं। इन्हीं हूकों से विरह के गीतों को जन्म मिलता है। जिन्हें गा कर मानव अपनी तड़पती हुई आत्मा को शान्त करना चाहता है,................वह गाता है,................कि शायद गीत की लहरों में खो कर ही उस सन्तप्त हृदय का सन्तापकु बुझ जाये,............और अन्तर का बोझ कुछ हलका पड़ जाये। एक गीत में देखिए—

अरे सावन मेंहदी बोवायउँ रे
अरे भादों मां दुई दुई पात
सैयां मोरा अर छाय रे बिदेसवा रे
सींचों मैं नयन निचोर

—[हाय ! सावन में मैंने मेंहदी बोई थी,
और भादों आया तो उसमें दो दो पत्ते भी निकल आये।
किन्तु मेरे प्रियतम तो परदेस में बसे हैं,
तभी तो मैं इसे नयनों के नीर से सींच रही हूँ।



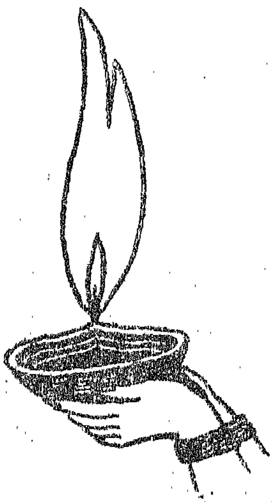
परदेसी प्रियतम की याद में आँसू गिराने में क्या सुख है,..............उस में कितनी मिठास है, इस का उल्लेख तो एक बिरहन के हृदय में ही निहित रहता है। लेखनी उसे लिख नहीं सकती। विरह में बनती मिटती उस की कल्पना तो इतनी असीम होती है, जिस का कोई ओर छोर नहीं होता। इसे तो केवल अनुभव ही किया जा सकता है। एक काश्मीरी बिरहन को देखिये, जो जाने कब से अपने परदेसी प्रियतम के आने की प्रतीक्षा कर रही है। और अब जब कि केसर के फूल खिलने की ऋतु भी आ पहुँची है, तब ऐसी बेला में तो उसे प्रियतम का वियोग बड़ा अखरता है। सोचती है, "मेरे साजन तो परदेस में हैं, फिर इस रूप और जवानी का सुख किसे हो?" केसर के वन में खड़ी अपने आपको जब निहारती है तो उस के हृदय पर

एक चोट सी लगती है। और है भी तो ठीक ही कि पुष्प और नारी का रूप दो ही तो ऐसी शक्तियां हैं जिनकी ओर मानव का हृदय अपने आप ही खिंचा चला जाता है। खिले हुए पुष्प को देख कर उसे तोड़ लेने को जी अवश्य ही चाहता है। इसी प्रकार नारी के रूप को देख कर उस से प्रभावित हुए बिना नहीं रहा जाता। परन्तु एक वियोग में लीन यौवना के यौवन का समस्त अनुराग तो सदा अपने प्रियतम की याद में ही समाया रहता है, फिर उस से कौन प्रभावित हो? उस से तो केवल उस के अनुराग का पारखी ही आकर्षित हो सकता है। तभी तो वह अपनी कसकती हुई वाणी में कहती है—

लज फुलय अन्द वनन
च कनन गोय न म्योन
लज फुलय कोल सरन
वाथु नीरन खसवो
फोलि योसमन अन्द वनन
च कनन गोय न म्योन
वनि दिमइ आरवलन
यार कुति मे लखना

—[दूर के जंगलों में पुष्प खिल उठे हैं,
क्या मेरे खिलते रूप की बात तुम्हारे कानों ने नहीं सुनी ?

'कोलसर' जैसे स्थानों पर भी पुष्प भर गये हैं,
आजा ! हम चारागाह की ओर चलेंगे ।
दूर वनों में यास्मिन के पुष्प खिल उठे हैं,
क्या मेरे रूप की बात तुम्हारे कानों ने नहीं सुनी
मैं 'अरावल' के पुष्पों को भी देख लूँगी,
हे प्रियतम क्या तुम मुझे कहीं नहीं मिलोगे]



वियोग के बखान की सीमा है ही कहां ! पल भी युग बन जाते हैं इसके प्रवाह में, और जब बरसात आती है, हर ओर घनघोर बादल गरजते हैं, तब तो एक बिरहन की सहन शक्ति की गति इतनी तीव्र हो उठती है, जिस के बीच हर ओर छाई हुई बहार भी उसे एक उजाड़ ऋतु के रूप में प्रतीत होती है, उसे लगता है, जैसे यह सब चीजें उसके वियोग की हंसी उड़ाने के लिये प्रकृति की ओर से प्रस्तुत की जा रही हैं। यदि वन में कोई मोर भी कूक जाये, तो उसकी बोली में भी इसे अपने हारे हुये विरह की उपेक्षा होती हुई प्रतीत होती है, और इस लिये उसे इन सब चीजों से घृणा हो जाती है। संसार की सारी खुशियां उसके लिये नीरस हो जाती हैं। उसकी सान्तवना का एक मात्र आधार बस केवल अपने साजन

की याद होती है, जिसके सहारे वह जीती है,............एक आस अपने हृदय में छुपाए,..............कि शायद एक दिन ऐसा आ ही जाये, जब उसके इस कठोर विरह-व्रत के तेज से विचलित होकर उसका साजन उस से मिलने को व्याकुल हो उठे। मिलन की उस घड़ी की आस लगाये ही वह जीवित रहती है, कि हर ओर सुख ही सुख छाया हुआ है, और बहार के दृश्य उत्पन्न हो रहे हैं, किन्तु इन बहारों में उसका साजन उसे अकेली छोड़ कर चला गया है, तो उसे जितना दुःख होता है। इस का अनुमान लगाना कठिन ही है। यहां ही देखिये, ब्रज की एक विरहन अपने मन की व्यथा अपनी सखी के समक्ष प्रकट करते हुये कहती है—

सखी मेरी बिथा सुनो सारी
सतावे चौमासा भारी
लगो आषाढ़ मास घनघोर
कि बिजुरी कर गगन में शोर
कि जंगल कूक रहे हैं मोर
पिया मोहे गये यहां पर छोड़

—[हे सखी—! तनिक मेरे हृदय का दुख तो सुनो,
कि यह बरसात मुझे बहुत सता रही है।
घनघोर घाटओं को ले कर आषाढ़ मास भी आ पहुंचा है,
और आकाश में विद्युत कड़क रही है,
और वन में मयूर कूक रहे हैं,
किन्तु हाय ! ऐसी ऋतु में भी प्रियतम मुझे यहां अकेली छोड़ गये हैं।

आषाढ़ मास लगते ही हमारे देश में वर्षा ऋतु का आरम्भ हो जाता है। यह एक स्वाभाविक सी बात है। आकाश पर ऊदी ऊदी घटाएं उमड़ने लगती हैं और उन के बीच से जब विद्युत कौंधती है तो एक बिरहन का हृदय कसक उठता है,..................एक टीस सी उठती है उसकी छाती में, ...भाँति भाँति के हृदय को दुःख देने वाले विचार अन्तर में उफन २ कर उस की बिरह में जलती हुई आत्मा को विचलित कर डालते हैं। यह सब कुछ उस से सहा नहीं जाता, तड़पती है,..................रोती है,...................... परन्तु अपने अन्तर की तूफानी प्रतिक्रियाओं को चीर कर किसी को दिखा नहीं सकती। और तब उसके हृदय में गीत का एक प्रवाह जाग उठता है और वह गाने लगती है—

सावन घन गरजै
कीधर की घटा ओनई
कीधर बरिसै गम्भीर
हमरा ललन परदेसिया
भींजत होइहैं कवन देस
सावन घन गरजै
जेहि घर हिंगिया न महँकै
जिरवा का कौन धौंगार
जेहि घर सासु दरुनियाँ
बहुआ का कौन सिंगार
सावन घन गरजै
खस के बंगला छवौतिउँ
चौ-मुख रखतिउँ दुवार
हरि लैकै सोउतिउँ अँटरिया
झोंकवन आवति बयार
सावन घन गरजै
अतलस लहँगा पहिरतिउँ
चुनरी बरनि न जाय
झमकि कै चढ़तिउँ अंटरिया
चौमुख दिनया बराय
सावन घन गरजै

—[सावन के मेघ गरज रहे हैं;
किसी ओर से घटा उमड़ रही है,
और किसी ओर गहरे मेघ बरस रहे हैं।
मेरे साजन तो परदेस में हैं,

जाने किस देश में वे भीगते होंगे ?
सावन के मेघ गरज रहे हैं।
जिस घर में हींग की महक हो न हो,
वहां जीरे के छौंक से क्या होगा ?
और जिस घर में सास और दो रानियां ही हैं।
वहां दुलहन विक बिन प्रियतम के शृंगार किसके लिये करे ?
कि हाय ! सावन के मेघ गरज रहे हैं।
यदि प्रियतम होते, तो मैं खस खस का महल बनवाती, जिसमें चारों और द्वार रखती।
अपने प्रियतम के साथ अटारी में मैं नींद लेती,
और सुगन्धित हवा के झोंके वहां आया करते।
किन्तु हाय ! सावन के बादल गरज रहे हैं।
यदि वे यहां होते ! तो मैं अतलस का लहँगा पहनती, और मेरी चुनरी ऐसी होती, जिसका वर्णन न हो पाता।
इठलाती हुई मैं प्रियतम की अटारी पर चढ़ती,
वहां चारों ओर मैं दीपक जलाती !
किन्तु हाय ! सावन के बादल गरज रहे हैं।]

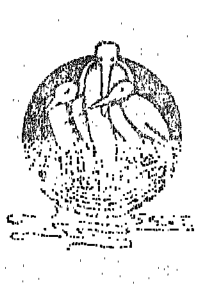


प्रियतम से दूर रहना किसे सुहाता है? यदि प्रेमी हृदय यही जान पाए कि वह अपने प्रियतम से बिछुड़ जायेगा, तो वह अपनी सम्पूर्ण शक्तियों सहित अर्थात् अपने आप को मिटा कर भी उसे कभी एक पल के लिये अपने से अलग न होने दे। परन्तु कौन कब बिछुड़ जायेगा, इसकी खबर किसे होती है! एक बिरहन के हृदय में अपने बिछुड़ते प्रियतम के प्रति उसे रोक लेने के लिये क्या कुछ नहीं उठता। यदि उसका बस चले तो वह उसे बाँध कर रख ले। परन्तु वह ऐसा नहीं कर सकती और अपने अन्तर की प्रतिक्रियाओं को प्रकट करने के बजाये वह आंसू बहाने लगती है। और उन आंसुओं की बरसात में भीगती हुई जब वह गा उठती है तो सुनने वालों के हृदय भी कांप जाते हैं। एक बिरहन को देखिए, जिसका प्रियतम

अपनी इस प्रियतमा के लाख रोकने पर भी हीले बहाने कर के उस से बिछुड़ कर चला गया है। जाने कितना समय बीत चुका है, परन्तु वह अभी तक नहीं लौटा। उसे याद आती है उस दिन की, जब उस का प्रियतम उस से बिछुड़ते समय उसे शीघ्र लौट आने का वचन दे रहा था। इस कल्पना मात्र से ही, उसकी आँखें भर उठती हैं और वह कहती है—

जो हम जानतो ये हरी जी
जाइब पर रे देसवा
कसि के बँधतों ये निरमोहिया
प्रेम केरा रे डोरिया

—[हे प्रियतम ! जो मैं ऐसा जानती,
कि आप बिछुड़ कर परदेस चले जाओगे।
तो हे निर्मोही ! मैं तुम्हें कस कर बाँध लेती,
अपने प्रेम की डोर में।



प्रियतम का वियोग सुनसान बना देता है जीवन को। ऐसा लगता है, मानो संसार से मोह अब छूट चुका है। जीवन इतना भारी हो जाता है, कि उसका भार भी अखरने लगता है। आत्मा प्रत्येक घड़ी परेशान रहती है,.........कुछ भी सुहाता नहीं,...... हर दिशा में उदासी ही उदासी छाई दीख पड़ती है। खुशी की घड़ियां भी एक वियोग में भटकती हुई ललना के लिए राम के युग बन जाती हैं, और उन घड़ियों में जिस समय भी उसे अपने प्रियतम की याद आती है, तो उसकी जो अवस्था होती है, उस का सरल तथा स्वाभाविक सा चित्रण निम्नांकित गीत की पंक्तियां में देखिये—

यक सुधि आइ गइली जेंवत करे
मोरा धईल जेंवन बसिया गइले हो

सुधि आ गइली संवरो सिपहिया क
यक सुधि आई गइली पनिया भरत करे
अरे फुटतै घरिल डूबि जातो रे
सुधि आ गइली संवरो सिपहिया क
यक सुधि आई गइली बिरवा जोरत करे
अरे खैर सोपारी मैं भूल गई रे
सुधि आ गइली संवरो सिपहिया क
यक सुधि आइ गइली जिया से सोवत करे
अरे डसती नगिन मरि जातो रे
सुधि आई गइली संवरो सिपहिया क

—[ज्यों ही भोजन के लिए बैठी तो मुझे एक याद आ गई,
और मेरा भोजन धरा ही धरा बासी हो गया।
कि मुझे अपने सांवले सिपाही प्रियतम की याद आ गई।
एक याद मुझे आई, जब मैं पानी भर रही थी,
उस समय मेरा कलश फूट कर टूट जाता।
कि हाय ! मुझे अपने सांवले सिपाही की याद आ गई।
एक याद आई मुझे, पान लगाते हुए,
तो उसमें मैं सुपारी डालना ही भूल गई।
कि हाय ! मुझे अपने सांवले सिपाही प्रियतम की याद आ गई।
एक याद आई मुझे सेज पर सोते हुए,
तो वह भी मुझे डसने लगी,
और मैं प्राण हीन हुई जाती हूँ।
कि मुझे अपने सांवले सिपाही की याद आ गई।

विरह की पुकार बड़ी करुण होती है। सुन कर हृदय भर आता है। पंजाब की एक बिरहन को देखिये जिसका प्रियतम परदेस चला है। विरह में व्याकुल है बेचारी। पढ़ना लिखना आता नहीं, जो दो बोल वियोग भरे लिख कर ही प्रियतम को बुलाने के लिए लिख भेजे। परन्तु चाहती है कि उसके दर्द की चिट्ठी उसके प्रियतम तक पहुंचे अवश्य ही। इसलिए वह अपने गांव के स्कूल मास्टर के पास जाती है, जिसे ग्राम: के लोग 'मुन्शी जी' कह कर सम्बोधित किया करते हैं। मुन्शी कठोर अवश्य है, परन्तु 'न' 'न' करते रहने पर भी अन्त में उस विरहिणी के आँसू उसके हृदय पिघला ही डालते हैं। वह कहती है—

वे मुणशी खत लिख दे
खत लिख सजना दे पासे

वे मुणशी खत लिख दे
तैनूँ देवां गी पंज पताशे
वे मुणशी खत लिख दे
नाँ नी कुड़े मैं खत नई लिखदा
नां मैं लैंणे पताशे
वे मुणशी खत लिख दे
तैंनं देवां गी पंज पताशे
वे मुणशी खत लिख दे
खत लिख सजणां दे पासे
माही परदेसों आवेगा
ढेर न्यांवां ल्यावेगा
गिण गिण वणडा लई हिस्से
वे मुणशी खत लिख दे
तैनूं देवां गी पंज पताशे
वे मुणशी खत लिख दे
खत लिख सजणां दे पासे

—[हे मुन्शी ! मेरा पत्र लिख दे,
मेरे साजन की ओर एक पत्र लिख दे ।
हे मुन्शी ! मेरा खत लिख दे,
मैं तुझे पांच पताशे दूंगी ।
हे मुन्शी ! मेरा खत लिख दे ।
नां री लड़की ! जा मैं तेरा खत नहीं लिखता,
और न हीं मुझे तेरे पताशे चाहिएं ।
हे मुन्शी ! मेरा पत्र लिख दे ।

देख ! मैं तुझे पांच पताशे दूंगी,
हे मुन्शी ! मेरा पत्र लिख दे ।
मेरे साजन की ओर एक पत्र लिख दे,
मेरा प्रियतम जब परदेस से आएगा,
तो वह अथाह धन अपने साथ लायेगा,
तब तू भी उसमें से गिन कर अपना भाग ले लेना ।
परन्तु हे मुन्शी ! अब तू मुझे पत्र लिख दे
पर हे मुन्शी तू मेरा पत्र लिख दे,
मेरे साजन की ओर एक पत्र लिख दे ।]



ग्राम की भोली भाली अशिक्षित ललना को अपने प्रियतम की सुधि जब अधिक सताती है, तो वह अपने विरह का सन्देश अपने परदेस में बैठे साजन तक पहुंचाने के लिये न जाने कैसे कैसे उपाय और जाने किस किस की खुशामद के यत्न व्यवहार में लाती है। जाने किस किस प्रकार नम्र होकर, हाथ जोड़ कर गिड़गिड़ा कर वह स्कूल में पढ़ने वाले छोटे छोटे बच्चों या गाँव के अन्य दुक्केक शिक्षित लोगों से अपने साजन के लिये एक पत्र लिखवाने का यत्न करती है। और जब किसी को उस के हाल पर दया आ जाती है, तथा वह उसका पत्र लिखने के लिये राजी हो जाता है तो अपने हृदय के उद्गारों को वह अपने प्रियतम के लिये जिस प्रकार व्यक्त करना चाहती है, उसकी एक मार्मिक झाँकी नीचे लिखे इस गीत में देखिए—

दिल दा टुकड़ा मैं काग़ज़ बणावाँ
उँगलियाँ कट के कानी
अक्खाँ दा कजला मैं शाही बणावाँ
अँजुआँ दा पाँउनी आँ पाणी

—[हृदय के टूक का नाम मैंने काग़ज़ बनाया है,
और उँगली काट कर बनाई है लेखनी।
नयनों के काजल की मैंने स्याही बनाई है,
जिस में आंसुओं का पानी डाला है।]



जिसका प्रियतम अपनी प्रिया को छोड़ कर स्वयं परदेस में जा बसे, उसके लिये फिर क्या सुख है इस संसार में ? वह चारी तो दिन रात यही सोचा करती है, कि शायद अब लौट आये उसका प्रियतम !.................उसकी राह में आँखें बिछाये हुये वह दिन महीने और वर्ष तक बिता देती है। पर आखिर कब तक प्रतीक्षा करे,...............कोई सीमा भी तो हो। विरह की अग्नि जला डालती है उसके शरीर को, ...सूख कर कांटा हो जाती है बेचारी,............ और फिर मौत की घड़ियां भी निकट आ पहुँचती हैं; परन्तु उसका प्रियतम नहीं आता, तो वह पछताती है............ जाने कैसे कैसे विचार आ आ कर मरण के इस त्योहार पर भी उसकी आत्मा को नोच डालते हैं,...........................जाने

कितने अरमान होते हैं, जिन्हें वह अपने नेत्रों के सामने मिटता हुआ देखती है।

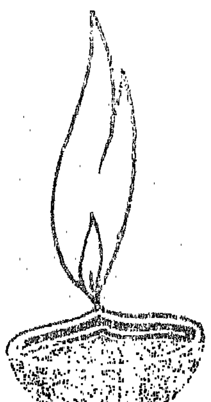
वह देखती है उस महान भवन को जो उसके प्रियतम ने अपनी इस प्रियतमा के रहने के लिये बनवाया था। किन्तु सोचती है कि, 'मेरे लिये इसका क्या महत्त्व,…………इसका महत्त्व तो मेरे लिये उसी दिन समाप्त हो गया था, जिस दिन मेरा प्रियतम मुझे यहां अकेली छोड़ कर स्वयं परदेस चला गया था,…………किन्तु फिर भी एक आस लगाई थी, कि शायद मिलन की घड़ियां कभी लौट आएँ,…………परन्तु वे नहीं लौटीं,…………और अब तो वह छोर आ पहुँचा है, जहां आ कर जीवन की लीला का अन्त हो जाता है।

प्रियतम का बनवाया हुआ वह भवन, जिस में अपने साजन के साथ रह कर जीवन बिताने के प्रति उसने अपने मन में अरमानों की एक नई दुनियाँ बसाई थी, अब उसे काट खाने को दौड़ता है,…………और उसका आँगन उसे श्मशान की तरह भयानक लगने लगता है,…………और जब प्राण निकलने का समय आता है, तो अपने हृदय में भड़क उठने वाले तूफ़ान को जिस प्रकार वह दबाना चाहती है उसका एक सीधा सादा सा चित्रण इस नीचे लिखे गीत में देखिये—

काहनूँ तैं पाइयाँ कोठड़ियाँ

तूँ दूर गयो वे माही
हुए एथे बसे गा केहड़ा

——[अरे ! तूने क्यों बनाये थे यह भवन ?
और उसके यह आँगन क्यों बनवाया था ?
तू तो चला ही गया रे साजन !
परन्तु अब यहां कौन आ कर बसे गा ।]



कविता होती है जीवन के दर्द की रस भरी व्याख्या, इसमें मानव हृदय का इतिहास छुपा रहता है। यह वह गान है............ जिस को प्रकृति जन्म देती है,..................मस्तिष्क की दुनियाँ से दूर,.........बहुत दूर,.........इनके स्वर हृदय के तारों से निकलते हैं। इस का मूल उद्देश्य है जीवन की प्रतिछाया को मधुर वाणी में सुरुचिपूर्ण भावों सहित संस्कार-युक्त भाषा में नीरस हुए मानव-मन के समक्ष उतार कर उसे सरस बनाना, ताकि वह जीवन में छुपे हुए सत्य का अनुभव कर सके और उसे जीने की प्रेरणा मिले।

आज के साहित्यिक ढंग की कविताओं में यह गुण देखने को कम ही मिलते हैं, तो फिर कविता का वास्तविक उद्देश्य कहां निहित है? वास्तव में इस उद्देश्य की पूर्ति केवल वही कविताएँ कर सकती हैं जो स्वतन्त्र हों, जिन की व्यापकता इतनी महान्

हो, जिस के घेरे में मानव वर्ग का प्रत्येक सदस्य आ जाये, जिन की भाषा सरल, सीधी और सामान्य हो जिसे प्रत्येक व्यक्ति समझ सके, जो प्राकृतिक सत्य पर आधारित हो, और जिस पर किसी प्रकार का कोई प्रतिबन्ध न हो, और ये हैं हमारे लोकगीत जिन में यह सब गुण पाये जाते हैं।

विरह पर भी यूँ तो अनेक कवियों ने अपनी महान से महान काव्य कृत्तियां लिखने का यत्न किया है, और इस में भी सन्देह नहीं, कि उन्होंने उन्हें तैयार करने में बड़ा परिश्रम किया होगा, किन्तु कला की महानता तथा शब्दों के हेर फेर या सौंदर्य के अतिरिक्त कविता के मूल रस का उन में अभाव ही दीख पड़ता है। शब्दों के सौंदर्य और कला की नियमित बेड़ियों में उलझ कर कविता के मूल-रस की प्राप्ति भला हो भी कैसे ! इसे जन्म दिया नहीं जाता, अपितु मानव हृदय में इस का जन्म समय की तेज और मन्द गतियों का स्पर्श पाकर अपने आप ही हो जाता है, बिलकुल उसी प्रकार जैसे वातावरण से प्रभावित हो कर बादल के बीच से जल की बूँदें अपने आप ही छूट पड़ती हैं।

लोकगीतों की सृष्टि भी मेंह की उन बूँदों की भान्ति ही होती है, इन में हृदय की सच्ची आवाज निहित रहती है.......... इन में आत्मा का सच्चा प्यार सजा रहता है और इतना ही नहीं अपितु इन का प्रभाव अलंकारिक सौंदर्य से परिपूर्ण काव्य से कहीं अधिक व्यापक होता है। इसी गीत में देखिए—

आज सोहाग कै रात
चन्दा तुम उइहो
चन्दा तुम उइहौ

सूरुज मति उइहौ
मोर हिरदा बिरस जनि किहेउ
मुरगा मति बोलेउ
मोर छतिया बिहरि जनि जाई
तु पह जिन फाटेउ
आजु करहु बड़ो राति
चन्दा तुम उइहौ
धिरे धिरे चलि मोरा सुरुज
बिलम करि अइहौ
आज सोहाग कै रात
चन्दा तुम उइहौ

—[आज मेरे सुहाग की रयन है,
हे चन्दा ! तुम निकल आना।
हां रे चन्दा ! तुम तो उदय होना,
परन्तु हे सूर्यदेव तुम मत उदय होना !
कहीं मेरा हृदय रक्तहीन न हो जाय,
इस लिये हे मुर्गा ! तुम आज बांग न देना
कहीं मेरी छाती न फट जाये,
इस लिये हे पौ ! तुम आज न फटना।
आज की रयन महान कर देना,
हे चन्दा ! तुम उदय होकर।
और मेरे सूर्यदेव ! तुम अत्यन्त मन्द गति से चलना,
और तुम देर कर के आना।
आज मेरे सुहाग की रयन है,
इस लिये हे चन्दा तुम अवश्य उदय होना।]

लोकगीतों की दुनियाँ अत्यन्त सरल होती है। मस्तिष्क के दाँव पेंच इन में नहीं होते, ... हृदय की सच्ची प्रतिक्रियाओं को सीधे सादे ढंग से उतारना ही इन की विशेषता है। रस की मधुरता से इनके भाव परिपूर्ण रहते हैं। यदि हृदय के सच्चे दर्शन करने हों, तो लोकगीतों के दर्पण में झाँक कर देखिये। इनकी मार्मिकता अपने आप ही दृष्टिगोचर हो जाएगी।

तनिक बुन्देल खण्ड के ग्रामीण समाज में आ कर ही देख लीजिए। ढोलक की ताल पर मस्त हुये किसी गांव के लोग विरहरस में डूबा हुआ एक कैसा हृदय विदारक फाग गीत गा रहे हैं—

पीपर पत्ता चीकने
दिन चिलकै औ रात

यारी बाला पन की
खटकत है दिन रात
लगी को कासों बिसारें
चन्दा पै खेती करौं
सूरज पै करो खरिहान
जोबन के बदरा करौं
मोरे पिया पसर को जाय
झमक झरि लागि रही भादों की

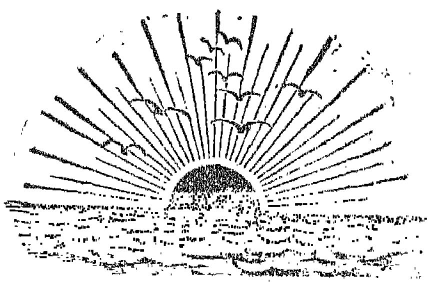
—[जिस प्रकार यह पीपल के चिकने पत्र,
दिन रात चमकते रहते हैं,
उसी प्रकार जवानी का यह प्यार,
मुझे दिन रात अखरता है।
इस अन्तर में अखरती प्रीति को कैसे शांत करूँ?
चांद पर मैं खेती करूँ
सूरज पर मैं खलियान रचाऊँ
और बरसा दूँ अपने यौवन के भर पूर बादलों को
जब भी मेरे साजन चरागाह को जायें
भादों की यह कितनी मद-मस्त फुहारें पड़ रही हैं।

बिरहन के आँसुओं में छुपे दर्द को लेखनी लिख नहीं सकती। इस टीस में जो वेदना भरी होती है, उसका वास्तविक सुख तो केवल वही प्राप्त कर सकता है, जिस के अन्तर में कभी प्रीति जागी हो, और जाग कर भी जो वियोग में बदल गई हो। कितनी कोमल होती है प्रेम की यह दुनियाँ, जो तनिक सी ठेस लगने मात्र से ही खण्ड खण्ड हो जाती है, और फिर आँसुओं के तूफ़ान मचल उठते हैं, जिन में फंस कर वियोगी मानव का हृदय डूबने लगता है। एक गीत में ऐसे ही मर्म-स्पर्शी स्वरों को देखिए—

भादों मास गरुव गंभीर
हमरे नयन भरि आये हैं नीर
जिया मोर डुबै औ उतिराय

हमरा खेवैया परदेस में छाय
सो कल न परै रे

—[भाद्र-पद का महीना कैसा गम्भीर है,
मेरे नयनों मे आंसू भर आये हैं।
हृदय मेरा डूबता और व्याकुल होता जा रहा है,
कि मेरा खेवन हार तो परदेस में बसा हुआ है
इस लिये चैन नहीं पड़ रहा है।]



वाह रे मानव ! तूने तो डूबते हुए हृदय की पुकार से भी गीतों का सृजन किया है, और दर्द की व्यथित घड़ियों में भी उन्हें गा गा कर तूनें अपने डूबते हुए हृदय की रक्षा की है।

यहाँ ही देखिए——प्रेम के दर्द से पीड़ित एक विरहिणी का प्रियतम जाने कितने वर्ष पश्चात् उसे आज की रात मिला है। किन्तु जब से उसने यह सुना है, कि प्रातः होते ही यह निर्मोही मुझे फिर अकेली छोड़ कर परदेस चला जायगा, तब से वह बड़ी बेचैन है। कुछ भी सूझता नहीं, कि कैसे रोके अपने साजन को। थक कर रुदन कर उठती है, और भगवान से विनय करती है—

साजन सकारे जाँअगे
नयन मरेंगे रोय
विधनां ऐती रयन कर
भोर कबहु न होय

—[मेरा प्रियतम प्रातः होते ही चला जायगे,
कि हाय ! मेरा नयन तो रो रो कर ही ज्योति हीन हो जायेंगे ।
हे भगवान ! तुम इस रात्रि को इतनी महान कर दे कि प्रातः कभी न हो सके ।]



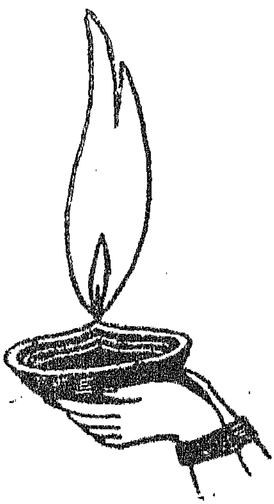
जन जन के गीतों में ही कविता का अनूठा रस निहित रहता है। इनकी विविधता तथा रसिकता से सुनने वालों का मन सहसा ही मुग्ध हो जाता है। वातावरण को मुखरित कर डालने वाले लोकगीतों की मद-भरी पंक्तियों में मानवीय मनोभावों का सच्चा स्वरूप छुपा रहता है। इनकी तन्मयता का क्या ठिकाना? .... ये अपूर्व होते हैं। चाँदनी रातों के गम्भीर वातावरण में जब कोई मंचला स्वर इनकी पंक्तियों से खेल उठता है, तो राह चलते हुये पथिक भी अपनी मंजिल को भूल कर इनके प्रवाह में खो जाते हैं।

देखिए तो! एक विरहन कहती है—

बरसिहु बरसिहु देव
हे आज केर रतिया

आरे पिया के जतरवा
सेहु बिलमाहु रे की

—[हे मेघ देवता ! तुम बरस पड़ो,
अरे । बस आज की रात ।
मेरे प्रियतम यात्रा को जाते हैं,
अरे उन्हे जाने से ठहरा लो ।



प्रेम पाश में फँसी हुई ललना के यदि वश में हो तो वह अपने प्रियतम को रिझाने के लिये गगन की तारिकाएं भी तोड़ कर उसके चरणों में चढ़ा दे। उसके लिये कुछ महान नहीं होता उसके प्रियतम के अतिरिक्त। अपने प्रेमी की खुशी के लिये वह अपने प्राणों से भी खेल सकती है। प्रीति से पीड़ित प्राणी की ऐसी ही दशा हो जाती है। वह चाहती तो बहुत कुछ है कि उसका प्रियतम उससे कभी विलग न हो परन्तु मनुष्य के चाहे से होता क्या है इस संसार में? होता तो वही है, जिसकी रचना भाग्य में कर डाली है विधि ने। इस लिये लाख चाहने पर भी उसका प्रियतम चला ही जाता है............. उसे अकेली छोड़ कर......! और जब उसे होश आता है, वो

प्रियतम की छाया उससे इतनी दूर पहुँच चुकी होती है, जहां तक वह जा नहीं सकती। यह देख कर वह बिलख उठती है। रात दिन नयनों से नीर ही बरसाया करती है।

काम काज से छुट्टी पाकर जब उसकी सखियाँ उसके पास दो घड़ी के लिये हंसने बोलने को चली आती हैं, तो भी वह अपने आँसुओं को नहीं रोक पाती और सिसकती हुई कहती है—

करूँ कौन जतन अरी ए री सखी
मोरे नयनों से बरसे बदरिया
उठी काली घटा बादल गरजे
चली ठण्डी पवन मेरा जिया लरजे
थी पिया मिलन की आस सखी
परदेस गये मोरे साँवरिया
सब सखियाँ हिंडोले झूल रहीं
खड़ी भीजूं पिया तोरे आंगन में
भर दे रे रंगीले मन मोहन
मेरी खाली पड़ी है गगरिया।

—[हे सखी, अब मैं क्या उपाय करूँ ?
मेरी आंखों से तो मेघ बरस रहे हैं,
ऊंची घटा उमड़ रही है, और मेघ गरज रहे हैं,
और इसी ठण्डी हवा की चाल से छू कर मेरा हृदय कांप उठता है।

प्रियतम से मिलने की आस थी केवल !

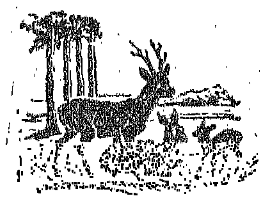
किन्तु हाय ! मेरे वे सांवले साजन तो परदेस सिधार गये ।

सभी सखी सहेलियां हिंडोले झूल रही हैं,

किन्तु हे पिया ! देखो मैं तुम्हारे आंगन में खड़ी भीग रही हूं ।

हे मेरे मन के मोहने वाले अब तो भर दे रे ।

देख, मेरे कलश सूखे पड़े हैं ।



ठुकराये हुए हृदय की पुकार जब कोई नहीं सुनता, तो उस में कविता का जन्म होता है, ताकि उसकी वेदना जरा बहल जाये और जब कण्ठ का रस भी उसमें आ मिलता है, तो संसार को हिला डालने की शक्ति उसमें आ जाती है और ऐसी ही अवस्था में एक भटकती हुई आत्मा की पुकार इस संसार को अपने करुण रुदन से प्रभावित करने में समर्थ हो पाती है।

जब किसी अबला का हृदय मारे वियोग के बेचैन हो जाता है तो वह गाती है, कि दुःखे हुए स्वरों में घुल कर ही उसके वियोग की पीड़ा कुछ कम हो जाये।

एक बिरहन कहती है—

अहो गये साजन अहो गये
लंघ गये दरेआ
असां रज्ज नां गल्लां कीतियां
साडे मनों न लथड़ा चाह

—[वह गये साजन, वह गये
और अब तो नदी भी पार कर गये ।
मैं तो जी भर कर बातें भी न कर पाई थी
कि मेरे तो अरमान भी अभी पूरे न हुए थे ।



आँसू बहाने के अतिरिक्त एक बिरहन बेचारी और कर भी क्या सकती है। प्रेम का तो पथ ही नीर भरा है। तनिक सी छाँव का स्पर्श हो जाने मात्र से ही प्रेम की गलियाँ आँसुओं की बरसात से भीग उठती हैं।

विरह से पीड़ित एक डोगरी ललना की दशा देखिये, जिसका प्रियतम उसे अपनी निर्दयी मां के आसरे पर छोड़ कर स्वयं परदेस कमाने के लिये चला गया है। उसके प्रियतम की अनुपस्थिति में सास उस पर बड़े कठोर अत्याचार करती है, परन्तु वह किसी से कुछ नहीं कहती, और यदि कहे भी, तो भी उस बेचारी की वहां कौन सुनता है! दिन भर घर के कामों में वह कोल्हू के बैल की तरह जुटी रहती है,

परन्तु फिर भी कठोर सास उसे बुराई ही देती है। यदि आँसू बहाती है, तो कितनी ही खरी खोटी बातें उसे अपनी सास से सुननी पड़ती हैं, और यदि शान्त रहती है, तो भी उसके लिये कोई ठिकाना नहीं जहां कि सास के जले कटे तानों से उसकी सुरक्षा हो सके तथा मुँह अन्धेरे ही उठा कर जालिम सास उसे चक्की पीसने के लिये बिठा देती है।

जब चक्की के पाट चलते हैं तब उनके शोर में बैठ कर ही उसका दुःखा हुआ हृदय अपना खुल कर रुदन कर पाता है। वह सोचती है यही तो एक घड़ी ऐसी आती है दिन में केवल एक बार, जब मैं चक्की के इन पाटों के शोर में बैठ लेती हूँ, और जहां इस शोर में यदि मैं अपने प्रियतम के वियोग में दो आँसू भी बहा लूँ तो इसकी अनियमित ध्वनि में बहते हुये मेरे रुदन स्वर जालिम सास के कानों तक शायद नहीं पहुँच पायेंगे। ऐसा सोच कर उसका दुःख कुछ देर के लिये तनिक हल्का पड़ जाता है, और वहखो जाती है अपने साजन की याद में। उसे लगता है जैसे चक्की के इन बे जान पाटों में भी आज जीवन सा आ गया है, और वे उसके दर्द से प्रभावित हो कर आज उससे उसके हृदय की व्यथा सुनना चाह रहे हैं। वे पूछते हैं, 'कि हे दुखिया विरहिणी! हमारी छूटती हुई मधुर रागिनी के बीच तेरा यह आँसू बहाना अच्छा नहीं लगता, इसलिये हमें बता तो सही कि तू यह आँसू क्यों बहाती है?' और तब उसे लगता है जैसे वह अत्याचारों की न जाने कितनी सताई हुई है। वह फूट फूट कर रो उठती है पर आँसुओं को तुरन्त पी लेती है, कि कहीं सास न देख ले और धीरे से गा उठती है—

तेरे पुड़ चक्कियां मोईये
कन्ते कन्ते केले दे
साडे दो दिल मोईये
बरतो बरत जले दे
पुड़े दा मिलाप
तदै सुर मिट्ठे लानियें
मनें दा वियोग मोईये
चेता की करानिये
उने जदों आना भी
की चेते तेरे भुल्ली जाने
ताने मेहनें भुल्ली जानें
जालो खोल भुल्ली जानें
मेरे कीसै इस घर
फुल्लें आली बहार औनी
कण्डे आंसु बिस्सा आलें
दिन असे भुल्ली जानें

—[तेरे जो ये पाट हैं, री निगोड़ी चक्की!
किन्तु इन के बिल्कुल असदृश,
हमारे दो दिल री नसीबों जली
पल पल पर जलते रहते हैं।
तेरे पाटों का परस्पर मिलन हो गया है।
तभी तू मीठे गीत गाती है।
और मेरे मन के वियोग को देख कर री अभागिन!
तू मुझे मेरे प्रियतम की याद क्यों दिलाती है?
वे जिस दिन आ जायें गे,

उस दिन मैं तुम्हारी याद भी भूल जाऊँगी
उस दिन मैं तुम्हारे तानों को बिल्कुल भूल जाऊँगी।
तब उस दिन मेरे इस घर में,
फूलों से भरी बहार आ जायेगी।
और कंटक के समान ज़हर से भरे हुये,
यह दुखदाई दिन मैं सदा को भूल जाऊँगी।



एक बिरहन की छाती पर दर्द का सब से गहरा प्रहार तो तब लगता है जब उसे यह ज्ञात होता है कि उसके प्रियतम ने जाते समय जितने वचन भी उसे दिये थे, वह सब के सब केवल एक छल मात्र थे। वह सह नहीं पाती इस चोट को, छटपटा जाती है, किन्तु कौन देखता है उसकी छटपटाहट को। जाने कैसे २ दुष्ट विचार आ आ कर उसके मस्तिष्क को झंझोड़ा करते हैं। उसे याद आता है वह दिन जब उसका प्रियतम उस से बिछुड़ रहा था।.................. उस दिन वह कितना रोई थी। उस के इन आँसुओं को देख कर एक बार तो तब उसका प्रियतम भी तड़प उठा था। उसे अपने प्रियतम की वह बात भी याद आती है, जो उसने अपनी इस दुखियारी प्रियतमा के आँसू पोंछते हुए उस दिन कही थी, कि हे प्राण-प्रिया! तुम्हें मेरी सौगंध

यह आँसू न बहाओ ...... मुझे अब जाने से न रोको, ... विश्वास करो मेरी बात का, ... मैं शीघ्र ही लौट आऊँगा।' और वह निर्मोही चला गया।............ वर्षों बीत गये...... परन्तु वह नहीं लौटा।

इन बातों को याद कर के वह विचलित सी हो उठती। परन्तु उसे लगता है, जैसे अपने प्रियतम पर अविश्वास कर के वह एक अन्याय कर रही है, ऐसा उसे नहीं करना चाहिये...... वह एक न एक दिन अवश्य लौटेगा।

इसी आशा को मन में छुपाये वह जीवित रहती है। प्रति दिन उसे निराशा का ही स्वागत करना पड़ता है। प्रियतम का स्वागत उसे कभी स्वप्न में भी करना नसीब नहीं होता।

अवध प्रान्त का यह निम्नलिखित गीत हमारे समक्ष एक ऐसी ही वियोगिनी ललना की करुण-दशा का कैसा मार्मिक चित्र प्रस्तुत करता है —

अमुवा महुलिया घन पेड़
जेहीं बीचे राह परी
रामा जेहि बीचे ठाड़ी एक तिरिया
मनें मां बैराग भरी
पूछै लागे बाट के बटोहिया
अकेली धन काहे रे खड़ी
रामा, चले जाहु बाट के बटोहिया
हमैं रे तुहैं काह परी
कि रे तुहैं सास ससुर दुख

कि नैहर दूर बसैं
रामा नहीं हमें सास ससुर दुख
नाहीं नैहर दूर बसैं
रामा, हमरा बलम परदेस
मनैं मां बैराग भरी
बहिनी तोहारा बलम परदेस
तुहैं कछु कहि न गये
भैया दै गए कुपवन तेल
हरपवन .... सेन्दूर
भैया दे गये चन्दन चरखवा
उठाई .... गजओबरि
भैया दैगये अपनी दुहइया
सतउ जिनि डोले
भैया चुकै लागे कुपवन तेल
हरपवन .... सेन्दूर
भैया घुनैं लागे चन्दन चरखवा
ढहइ .... गजओबरि
भैया चूकै लागी मोरि उमरिया
हरी जी नाहीं, आयेन

—[आम और महुआ के घने पेड़ खड़े हैं
उस के बीच एक रास्ता है।
जिस पर कोई स्त्री खड़ी है, हे राम !
जिसका मन विरह में लीन है,
एक राहगीर ने पूछा,
हे ललना तुम क्यों खड़ी हो

ओ राही ! तुम चले जाओ, हे राम ।
हम से तुम्हें क्या काम ?
क्या तुझे अपने सास ससुर की ओर से पहुंचा है ?
या तेरे बाबुल तुझ से अति दूर बसते हैं ।
अरे ! न तो मुझे सास ससुर की ओर से कोई दुख
पहुँचा है,
और न ही मेरे बाबुल मुझ से दूर बसते हैं ।
मेरे प्रियतम परदेस में हैं, हे राम !
इसी लिये मेरा मन वियोगी बना हुआ है ।
हे बहन ! तुम्हारा प्रियतम परदेस तो चला गया,
पर क्या वह तुम से कुछ कह कर नहीं गया ?
हे भाई ! वे तो मुझे कुप्पों में भर कर तेल दे गये थे,
और सिन्दूर का सिंधौरा भर कर दे गये थे ।
हे भाई ! वे तो मुझे चन्दन का चरखा दे गये थे,
और आसरा लेने को कुटिया भी बना गये थे ।
हे भाई ! वे मुझे अपनी सौगन्ध दे कर गये थे,
कि सत्य का परित्याग न करना
पर हे भाई ! तेल के कुप्पे भी समाप्त हो गये हैं,
सिंधौरे का सिन्दूर भी समाप्त हो चला है,
और हे भाई ! चन्दन का चरखा भी अब घुन उटा है
और कुटिया भी गिरी जा रही है ।
हे भाई ! मेरी उमर भी अब बीत चली है,
परन्तु मेरे प्रियतय अभी तक नहीं आये ।]

लोकगीतों में भावों का थोथापन कम ही दिखाई देता है। भले ही वह किसी भी रस का हो, और चाहे वह जीवन के किसी अंग का भी प्रदर्शन क्यों न करता हो फिर भी उसके बोल प्रभावशाली तथा श्रेष्ठ भावों से परिपूर्ण होते हैं।

विरह रस के इन गीतों में भी हमें वियोगी हृदय के ऐसे ही सच्चे तथा भोले भाले दर्शन होते हैं, जिन पर हमें गर्व होता है। यह गीत स्वयं इस के साक्षी हैं, कि प्रियतम के प्यार और मिलन से वंचित हो कर भी भारतीय नारी अपने सत्य पर डटी रहती है। यह जान कर भी कि उसके प्रियतम ने उस से छल किया है और वह अब कभी न लौटेगा, उस के प्रति कोई अविश्वास अपने हृदय में नहीं आने देती, जो उसे पथ भ्रष्ट कर दे।

वियोग की कठोर से कठोर यातना को झेलती हुई भी वह यही समझे रहती है कि वह एक दिन अवश्य ही आयेगा और इसी वहम को छाती में बसाये वह अपने नारी-धर्म की रक्षा करती चली जाती है। भले ही उसकी बाट जोहते जोहते वह अपने जीवन की अन्तिम सांस के निकट क्यों न पहुँच जाये!

यही है वह महान चरित्र, जिस के बीच हमारे देश की अमिट शान भरी हुई है, और जब यह हमें अपने देश के लोक गीतों की मधुर धाराओं में जागता हुआ दिखाई देता है, तो हम झूम उठते हैं।

अलंकार तथा पिंगल आदि की पट्टियों में बंधा हुआ महान से महान कवि भी जब एक वियोगिनी के जलते हुए हृदय की दर्द भरी कल्पना करता है, तब दुःख से भरे हुये उसके वेदनामय विचारों का प्रवाह हमारे आदर्श से भटक कर दूर जा सकता है, परन्तु लोक गीत अपने क्षेत्र में केवल एक इसी से नहीं, अपितु कविता के समस्त स्वाभाविक गुणों से परिपूर्ण होते हैं और इसी लिये इन की व्यापकता शिष्ट साहित्य से कहीं अधिक लम्बी और महान चली आई है।

एक गुजराती गीत में प्रियतम के दर्शन को तरसती हुई नारी को देखिये, जो एक पक्षी के हाथ अपने साजन को अपना विरही सन्देश भेजती है—

कुंजलड़ी रे संदेशो अमारो
जई बालम ने केजो जी रे

माणस होय तो मुखो मुख बोले
लखो अमारी पंखलड़ी रे
कुंजलड़ी रे संदेसो अमारो
जई बालम ने केजो जी रे
सामा काँठाना अमे पंखीड़ा
ऊड़ी ऊड़ी आ कांठे आव्या जी रे
कुंजलड़ी रे संदेशो अमारो
जई बालम ने केजो जी रे
कुंजलड़ी ने वा लो मीठो मेरामण
मोर ने वा' लुँ चौमासों जी रे
कुंजलड़ी रे संदेशो अमारो
जई बालम ने केजो जी रे
राम लखमण ने सीता जी वा' लां
गोपियों ने वा' लो कानड़ो जी रे
कुंजलड़ी रे सन्देसो अमारो
जई बालम ने केजो जी रे
प्रीति काँठा न अमेरे पंखीड़ाँ
प्रीतम सागर बिना सूना जी रे
कुंजलड़ी रे संदेशो अमारो
जई बालम ने केजो जी रे
हाथ परमाणे चुड़लो रे लाव जो
गुजरी माँ रत्न जुड़ाव जो जी रे
कुंजलड़ी रे संदेशो अमारो
जई बालम ने केजो जी रे
डोक परमाणे झरमर लाव जो

तुलसीए मोतड़ाँ बंधाव जो जी रे
कुंजलड़ी रे संदेशो अमारो
जई बालम ने के जो जी रे
पग परमांणे कडलां लाव जो
कांबीयुँ माँ घुंघर बंधाव जो जी रे
कुंजलड़ी रे संदेशो अमारो
जई बालम ने के जो जी रे

—[हे कुंजलड़ी ! मेरा यह संदेश है,
इसे ले जा कर मेरे प्रियतम से कहना
मनुष्य यदि होती तो मुख से बोलती
अच्छा ! मेरे पंखों पर ही अपना सन्देश लिख दो
ओ कुंजलड़ी ! मेरा यह सन्देश है
इसे ले जा कर मेरे साजन से कहना ।
हम तो उस ओर के पंछी हैं,
उड़ कर ही इस ओर आ गये हैं ।
ओ कुंजलड़ी मेरा यह सन्देश है,
इसे ले जा कर मेरे बालम से कहना ।
कुंजलड़ी को अच्छा लगता है मधुर सागर
और मयूर को वर्षा ऋतु भाती है ।
ओ कुंजलड़ी ! मेरा यह सन्देश है,
इसे ले जा कर मेरे [illegible] से कहना ।
राम [illegible] सुहाती है,
और गोपिकाओं को सुहाता है कृष्ण ।
ओ कुंजलड़ी ! मेरा यह सन्देश है,

इसे ले जा कर मेरे सैयां से कहना।
हम तो प्रेम सरिता के तीर पर रहने वाले पंछी हैं,
प्रीतम रूपी समुद्र बिना हम सूने हैं,
ओ कुंजलड़ी मेरा यह सन्देश है,
इसे ले जा कर मेरे प्रियतम से कहना।
हस्त परिमाण का कंगन ले कर आना,
और गुजरी के बाज़ार जा कर इस पर रत्न जड़वाना।
ओ कुंजलड़ी! मेरा यह सन्देश है,
इसे ले जा कर मेरे पिया से कहना।
कण्ठ के परिमाण का 'चिकन्हार' ले कर आना,
और तुलसी की माला में मोती बंधवा कर लाना
ओ कुंजलड़ी! मेरा यह सन्देश है,
इसे ले जा कर मेरे प्राणाधार से कहना।
पग के परिमाण का 'कंडला' (पायल) लाना।
और 'काम्बियुं' में घुंघरू बंधवा कर लाना।
ओ कुंजलड़ी! मेरा यह सन्देश है,
इसे ले जा कर मेरे प्रियतम से कहना।]



लोक गीतों की पंक्तियाँ जीवन के प्रत्येक रस से परिपूर्ण होती हैं और यदि बारीकी से देखा जाये, तो कविता का वास्तविक रूप एक मात्र इन्हीं में समाया हुआ दिखाई देता है। कवियों को इन गीतों से अपने भावों को सुन्दर और पवित्र बनाने की प्रेरणा मिलती है। विचारवानों के लिये इन के बोलों में महान विचारों का एक अद्वितीय कोष निहित होता है। विद्वानों के लिये इन में युगयुगान्तर से चली आ रही विभिन्न क्षेत्रों की सभ्यता और संस्कृति का सच्चा भण्डार भरा होता है।

यह गीत जिस क्षेत्र के भी हों, वहाँ के लोक जीवन की झांकी इन की पंक्तियों में पूर्णतः बसी होती है। इन के स्वरों से प्रकृति का संगीत फूटा करता है। यह गीत जिस रस के भी

होते हैं, उस रस के गम्भीर तत्वों का इन में समावेश रहता है। एक शिक्षित कवि भले ही ऐसे तत्वों को छूने में कभी चूक जाये, परन्तु इन गीतों के अशिक्षित लोक कवि अंजाने में स्वाभाविक ही उन्हें छू लिया करते हैं।

बघेल खण्ड के गोंड समाज में ही झाँक कर देखिए, जिसे आज तक कभी शिक्षा के एक अंश ने भी छू नहीं पाया, और जो युग युगान्तर से आज तक अपनी आदिम अवस्था में ही चले आ रहा है। आपको स्पष्ट दीख पड़ेगा, कि भले ही यहां के लोग बिछड़े हुए आदिवासी सही, परन्तु इनके गीतों में भी प्रकृति का सच्चा गान फूटा करता है। यहां के एक झूमर गीत में एक विरहिणी के हृदय की पुकार तो जरा सुनिए—

आसों के संवत निरधारे
आज साजन नहिं आये प्यारे
झिंगुरा झिम्झकार मनाइस
खरहा टहकोरे
बैरी चण्डाल आधा खटिया भर पारे
आज साजन नहीं आये प्यारे
लग गई जेठ मास लग गई असाढ़े
चीटी चिरई चुनगुन ले बन खोझै
बैरी चण्डाल अजहुँ खबर न लेए
साजन नहि जु आवे प्यारे
आज साजन नहिं आये प्यारे
सुर सुर सुर पवन चलत
खर भर उतपात करत

आमा अमली के डार
कुइली सुर करता
आज साजन नहिं जु आवें प्यारे
आज साजन नहिं आये प्यारे
घुमड़त है चार दिसा बरसत है बूंद मघा
चार बूंद छतियन मा पड़े, अकबक जिया करै
आज साजन नहिं जु आवें प्यारे
आज साजन नहिं आये प्यारे
बरसत असाढ़ राजा
जोतला हरिपत राजा
रुचि रुचि बीज हा निकारै
आज साजन नहिं जु आवें प्यारे
आज साजन नहिं आये प्यारे

—[यह वर्ष तो पूर्ण हो गया,
किन्तु आज भी प्रिय प्रियतम नहीं लौटे।
झींगुर झिंगार कर अपनी खुशी मना रहे हैं
और खरगोश भी बोलने लगा है,
पर मैं उस निर्दयी चण्डाल की बाट तकती आधी खाट के एक पक्ष पर लेटी हूँ।
किन्तु मेरे साजन आज भी नहीं लौटे।
जेठ मास प्रारम्भ हुआ था, और अब आषाढ़ भी लग गया है।
चींटीं और चिड़ियां अपने शिशुओं सहित बन में स्थान खोज रही हैं।

परन्तु इस निगूढ़े साजन ने अभी तक मेरी सुधि न ली।
प्यारे साजन अब भी नहीं लौटे।
प्यारे साजन अब तक नहीं लौटे।
पवन सरसराता हुआ बह रहा है,
और खड़बड़ाता हुआ उत्पात मचा रहा है।
और आम्र तथा इमली की शाखाओं पर,
कोकिल कूक मचाती है।
परन्तु प्रिय साजन अब भी नहीं आते जी!
आज तक मेरे प्यारे साजन घर नहीं लौटे
चारों ओर से बादल उमड़ रहे हैं, और मघा की बूंद
बरस उठी है।
चार बूँद छाती पर गिरती हैं, तो मन घबरा उठता है
किन्तु साजन अब भी नहीं आते जी!
प्यारे साजन आज भी नहीं लौटे।
आषाढ़ मास बरसने लगा है।
हरिपति राजा ने खेत जोत लिये हैं,
और अब उन में सुन्दर सुन्दर बीज भी फूट उठे हैं।
परन्तु देखो जी, मेरे प्रियतम नहीं आए,
प्यारे सैयां अभी तक नहीं आए।

विरह के गीतों में बड़ी पीड़ा निहित होती है, और हमारे देश के विरह-गीतों में तो कलेजों को दहला कर फाड़ डालने वाली शक्ति निहित होती है।

भारतीय नारी की लाचारी और मजबूरी को इन की पंक्तियों से मिटा पाने का साहस आज तक किसी में भी जाग नहीं पाया। कितने आश्चर्य की बात है, कि जिस समाज ने अपने कठोर पंजों के नीचे यहां की नारी के अस्तित्व को धीरे धीरे आज तक इतना दबा दिया है, कि वह तड़पती है, परन्तु उफ़ तक नहीं कर पाती, उसी समाज के बीच यह गीत जन्म पाते हैं। परन्तु इन की उपेक्षा करने की शक्ति समाज में नहीं जाग पाती।

और हो भी कैसे? इन गीतों का जन्म तो प्रकृति की

ओर से होता है,............उस प्रकृति की ओर से.....जिसे आज तक कोई नहीं दबा पाया,...............और जो कठोर से कठोर शक्ति के दबाव के नीचे आकर भी कभी नहीं दबती। इसीलिये तो लोकगीतों को प्रकृति का अनूठा धन समझा गया है, एक ऐसा धन,...............जो संगीत भरा है,...............जिसमें जीवन का सच्चा संदेश छुपा रहता है,...............और जो अत्यन्त सरल तथा स्वाभाविक होता है।

बाह्य कृत्रिमता को हटा कर झांकिए तो मानव में भी प्रकृति का ही स्वरूप दिखाई देता है, तभी तो जब वह सुख की महिमा से प्रभावित होकर खिलता और दुःख या अन्याय के भार से दबता और बिल्कुल दबता चला जाता है, तो वह कृत्रिमता के आवरण को चीर कर अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्त होता है। और ऐसी अवस्था में जब वह अपने प्रकृति-विरुद्ध जागे असन्तुलन द्वारा प्राप्त हुए उस स्वरूप का संतुलन बनाये रखने की स्वाभाविक तौर पर चेष्टा करता है, तो उसके हृदय में गीतों का जन्म होता है।

इसीलिये लोकगीतों को श्रेष्ठ माना गया है। इनका विषय चाहे कैसा भी क्यों न हो, परन्तु फिर भी वह मानव की प्रकृति, और उसके निष्पन्न मनोभावों की सच्ची तस्वीर इस दुनियाँ के समक्ष प्रस्तुत करते हैं।

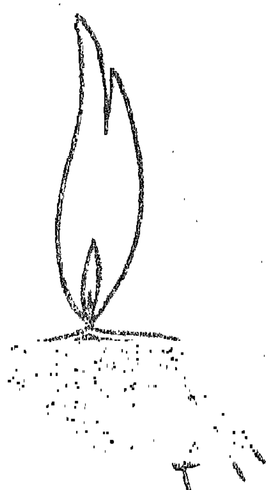
यहाँ ही देखिए, कि जब सावन का मस्त महीना आता है, तो लगता है जैसे मृतक समान इस मौन संसार में पुनः नव जीवन जाग उठा है। परन्तु ऐसे समय में उस ऐसी नारी की दशा कितनी पीड़ायुक्त हो जाती है, जिसका प्रियतम उसके पास न हो;

प्रियतम ही तो सब कुछ होता है उसके लिए, परन्तु प्रियतम से दूर अकेली बैठी वह विरहिणी ललना किस के साथ बैठकर इस महान पर्व का सुख मनाए, क्योंकि और तो सारा जगत अपने २ संगी साथियों के साथ सारे जगत से भूला हुआ इस आनन्द उत्सव का सुख भोग रहा है, परन्तु उसका संग नहीं है उसके पास! सोचती है, काश! मेरे साजन भी आज घर होते, तो मैं भी आज हंसती, गाती, और प्रियतम के साथ बैठकर सुख प्राप्त करती। किन्तु यह सब कुछ सोचकर तो उसका दुःख बढ़ता ही है,................उसका हृदय भर आता है। पर किस से कहे अपने हृदय की बात! परन्तु रोका भी तो नहीं जाता मन का ताप, इसलिए धीरे से गा उठती है—

सूख गई रंग भरी पेली
विपत मैं ने बहुतेरी झेली
महीना सावन का आया
पिया परदेसों में छाया
हिण्डोले गढ़ावें वे सखी री
जिन के पिया घर हों
हमरे पिया परदेस में रे
नहीं किसी का दोष
पलट गये कर्मों के फांसे
उलट गये कर्मों के फांसे
मैं लिख लिख भेजूं परवाना
सजन का नहिं होता आना

—[मेरा यह रंगीन शरीर सूख चुका है,

मैं ने बड़े बड़े दुख उठाए हैं
सावन का महीना भी आ गया है
किन्तु मेरा प्रियतम परदेस में ही रमा हुआ है।
हे सखी ! यह हिण्डोले तो वही तैयार करवाती है।
जिन के पिया घर पर रहते हों।
मेरे प्रियतम तो परदेस में रमते हैं
परन्तु इसमें किसी का क्या दोष।
कर्मों की गति ही पलटी हुई है।
मेरे कर्मों का प्रवाह तो प्रतिकूल है
मैं तो पत्र भी लिख लिख कर भेजा करती हूं
परन्तु प्रियतम का आना किसी प्रकार नहीं होता।



लोकगीत जीवन के बहाव के साथ साथ ही बहा करते हैं। वे किसी के भी रोके से कभी नहीं रुकते। यों तो कहने के लिये समय के अनुकूल इनकी भाषा और बनावट में थोड़ा बहुत परिवर्तन होता ही रहता है। परन्तु फिर भी ये अपनी प्रकृति को कभी भी त्याग नहीं पाते। वास्तव में ये मानव-भावों के ऐसे सीधे-सच्चे उद्‌गार होते हैं, जिन में से युग युग के लोक-जीवन का प्रतिबिम्ब छन छन कर आया करता है। मानव जीवन के प्रत्येक अंग की सजीव धड़कन इन में परिलक्षित होती है।

इतना ही नहीं, अपितु इससे भी बढ़ कर विशेषता लोक-गीतों में यह होती है, कि इन में समाया हुआ संगीत तत्व बड़ा ही

अनूठा होता है । और कविता या कथा से कहीं अधिक संगीत का प्रवाह ही हमारी आत्मा के तार हिलाने में समर्थ होता है ।

गीतों की व्याख्या करते हुए श्री 'परी' ने लिखा है, "लोक-गीत आदि-मानव का उल्लासमय संगीत है । गुफाओं में पनपते हुए मानव में जब थोड़ी बहुत बुद्धि आई और उसके आधार पर उसमें भावनाओं के अंकुर फूटे तो उन्हें व्यक्त करने के लिये उस ने भांति भांति के टेढ़े मेढ़े अलाप लेना प्रारम्भ कर दिया ।"

देखने में मानव आज भले ही कितना भी बदला हुआ क्यों न जान पड़े, परन्तु उसके अन्तर में झाँकने पर विदित होगा, कि वह आज भी वैसा ही साधारण और भोला भाला है, जैसा कि आज से हज़ारों लाखों वर्ष पूर्व अपनी प्रारम्भ की आदिम अवस्था में था ।

आज भी उसके अन्तर में वही हृदय विराजमान है, जो उसके आदिम पूर्वजों के पास था । आदि युग के सब से पहले मानव का हृदय जिस प्रकार परिस्थितियों के दबाव से प्रभावित होकर कभी दुःख उठता था, उसी प्रकार आज के मानव का हृदय भी अपने आप ही दुःख उठता है ।

दुःखे हुए हृदय की वाणी को सह पाने की क्षमता किस में है ! बड़ी प्रभाव युक्त होती है यह । और इस में भी वियोग की दुःख भरी वाणी में तो दर्द की मात्रा सब से अधिक होती है ।

एक नारी को देखिए, जिसका प्रियतम जाने कितनी मुद्दत से परदेस में जाकर बैठा हुआ है, और इधर वह बेचारी उसकी

राह तकते र हार चुकी है। भरी जवानी में ही बेचारी को विरह का दुःख उठाना पड़ रहा है।

बसन्त ऋतु आती है, तो हर ओर फूल खिल उठते हैं, परन्तु उस बेचारी के लिए उनका क्या महत्त्व। उसका तो स्वयं ही फूल से भी अधिक खिला यौवन लखने वाला जब उसके पास नहीं, तो बाग में खिलने वाले उन्मत्त पुष्प उसे अपनी मस्त सुगन्ध से कैसे प्रभावित करें। चिट्ठियां लिख लिख कर हार जाती है, परन्तु परदेसी प्रियतम की ओर से उत्तर रूप में केवल निराशा ही उसे प्राप्त होती है। मैथिल प्रदेश के इस 'चैतावर गीत' में विरह से पीड़ित नारी का एक ऐसा ही मार्मिक चित्र देखिए—

नइ भेजे पतिया
आयल चैत उपतिया हे रामा
नइ भेजे पतिया
विरही कोयलिया शब्द सनावे
कल न पड़े अब रतिया हे रामा
नइ भेजे पतिया
बेली चमेली फूले बगिया में
जोबना फूलल मोर अंगिया हे रामा
नइ भेजे पतिया

—[कोई पत्र तक न भेजा मेरे साजन ने,
मनचला चैत भी अब तो आ गया, हे राम !
विरहणी कोयल कूक रही है,

अब तो रैन भी बेचैनी में कटती है, हे राम !
परन्तु मेरे प्रियतम ने एक चिट्ठी तक नहीं भेजी।
बाग में बेला और चम्बेली खिल उठी हैं
और इधर यौवन खिल उठा है मेरी अँगिया में हे राम !
पर प्रियतम ने कोई पत्र नहीं भेजा।]



भारत भूमि के किसी भी क्षेत्र में जाकर देख लीजिये, प्रत्येक स्थान पर ऐसे ही अनेक लोकगीत आपकी हृदयतन्त्री के तार हिलाते चलेंगे। सुख दुःख की गहरी अनुभूतियों से सजे हुए इनके भाँति भाँति के स्वर आपको सुनने को मिलेंगे।

काँगड़ा की मन-मोहिनी गिरि-मालाओं के आंचल में आइये, जहाँ हर ओर केवल प्रकृति का ही साम्राज्य है, और जिसे देख कर आज भी हमें इसके कभी देव-भूमि होने का आभास हो उठता है। यहां पर भी गीतों के मधुर स्वर गूंजा करते हैं, और जब गूंजते हैं, तो लगता है, जैसे पहाड़ गूंज रहे हैं, उनके आंचल में कल कल करते बह रहे झरने गूंज रहे हैं।

और गूंज रहा है वह सारा वातावरण जिसके सुहावने दृश्य अपने शांति-प्रिय शीतल स्वभाव का सन्देश जगत को देने में कभी संकोच नहीं करते।

संसार सागर के बीच पड़ा और उसके थपेड़ों से घायल हुआ मानव जब शांति और धीरज की खोज में भटकता है, तो ऐसे पर्वतों की गोद में ही उसे आराम मिल पाता है। क्योंकि यही वे स्थान हैं जहां आकर ईश्वर ने अपना कोई भी भेद मानव से छुपाया नहीं, और इस प्रकार अपना विराट रूप विभिन्न प्रकार की दृश्यावलियों में सजाकर उसने उसे अपने भुलाए हुए अस्तित्व को याद दिलाने का प्रयास किया है।

यदि इस देव भूमि पर बसने वाले मानव के जीवन का गम्भीरता पूर्वक अवलोकन किया जाये, तो हमें ज्ञात होगा कि भले ही उनके बीच अशिक्षा बुरी तरह फैली हुई है और या वे लोग निर्धनता के अभिशाप द्वारा बुरी तरह घायल पड़े हैं, परन्तु फिर भी उनके हृदय में धीरज है,...शांति है। दुनियां के दुःखों से ऊब कर वे मरना नहीं चाहते, अपितु जीना चाहते हैं। बड़ा प्यार है उन्हें अपने जीवन से! और इसका एक मात्र कारण है पर्वतों का शांतिमय साम्राज्य, जहां केवल प्रकृति राज्य करती है। जहां हृदय को ठगने वाला कृत्रिम रूप नहीं, अपितु कभी न मिटने वाला सच्चा आकर्षण है। और बिलकुल इसी भूमि की भांति शुद्ध-चित्त तथा सरल स्वभाव के यहां के निवासी हैं। सचमुच ये लोग प्रकृति के भोले भाले बच्चे हैं। और इनके गीत...............?

हां! इनके गीत भी इन्हीं की भांति सीधे सादे और

मधुरता से परिपूर्ण होते हैं, और इतना ही नहीं अपितु यह कहने में हमें तनिक भी संकोच नहीं, कि हिमालय की गोद में जन्म पाकर धन्य होने वाले इन पर्वत निवासियों के गीत ही प्रत्येक दृष्टिकोण से दुनियां भर के सब से सीधे और मधुर लोकगीत हैं।

वैसे तो इस भूमि के गीतों ने भी मानव जीवन के प्रत्येक अंग का स्पर्श प्राप्त किया है, परन्तु फिर भी के बीच में गृहस्थ जीवन अथवा प्रेम-युक्त जीवन से सम्बन्धित गीतों की ही अधिकता पाई जाती है। प्रकृति ने सदा ही इन्हें अपने स्पष्ट रूप से प्रभावित करके प्रेम करने की प्रेरणा दी है, तभी तो यहाँ के लोग अपने दैनिक जीवन में भी प्रेम को ही सब से अधिक महत्व देते हैं, और इसी लिये इनके गीतों में भी इस पवित्र सम्बन्ध का पाया जाना एक स्वाभाविक सी बात है।

पहाड़ी नारी के प्रति भी प्राय: ऐसी ही धारणा पाई जाती है, कि वह जब किसी से एक बार अपना प्रेम सम्बन्ध जोड़ लेती है, तो फिर इस मार्ग पर लोहे की भांति दृढ़ हो जाती है। संसार की बड़ी से बड़ी शक्ति भी फिर उसे अपने इस मार्ग से हटा नहीं सकती। वह मिट जाती है परन्तु बड़े बड़े तूफ़ानों से टक्कर ले लेने की क्षमता उसमें तब जाने कहाँ से आ जाती है। और फिर छोड़ जाती है अपनी याद,……पर्वत की कड़ी चट्टानों के मौन जिगर में……दर्द भरने के लिये।

कांगड़ा की नारी के चरित्र में भी ऐसी ही विशेषता निहित है। जाने कितनी कहानियां यहां के कठोर समाज के बीच इसी आधार के हर ओर गूंज रही हैं। जाने कितने गीत यहां की प्रेम मार्ग में हार खा कर मिट जाने वाली ललनाओं के

इस घाटी के आँचल में भटकते फिर रहे हैं, और प्रेरणा दे रहे हैं अपनी आने वाली नसलों को, बार बार मिट कर भी निरंतर अपने मार्ग पर डटे रहने की !

"कुंजो," "चंचलो," "मोहन गद्दी," "कोला" "हरी सिंह," "राँझू" "तथा "फुलमों" समान प्रेम पथ पर मिट जाने वाले अपने प्यार के देवी देवताओं को कांगड़ा के कठोर पर्वत कभी भुला नहीं सकते। इनके प्रेम की अनोखी तथा पावन पूजा को आधार मान कर यहां के समाज में अनेक दर्द भरे लोकगीतों की रचना हुई है, जो आज भी जब अपनी पीड़ा से भरपूर स्वर लहरियों में कभी यहां गूंज उठते हैं, तो लगता है जैसे पहाड़ों की छातियां भी इनके दर्द से प्रभावित हो कर अब फट जाने को व्याकुल हुई जा रही हैं।

रांझू और फुलमों के प्रति यहाँ प्रसिद्ध है, कि ये दोनों प्राणी परस्पर इतना अगाध प्रेम करते थे, कि जब तक एक दूसरे को देख न लें इन्हें चैन नहीं पड़ता था। प्राणों के लोभ का भी इनके अटूट प्रेम के बीच कोई महत्व नहीं था। परन्तु निर्दयी समाज को इनका यह सम्बन्ध भाया नहीं, और उसने अन्याय-पूर्वक इसे तोड़ डाला। कारण यह था, कि "रांझू" स्वयं तो ब्राह्मण था, परन्तु उसकी प्रियतमा "फुलमों" एक निम्न जाति से सम्बन्ध रखती थी। इसलिए जात-पात को अधिक महत्व देने वाले लोगों ने उन्हें एक दूसरे से अलग हो जाने पर मजबूर कर दिया।

कहते हैं, कि "रांझू" के हृदय से फुलमों की याद भुला देने के विचार से बाद में उसके माता पिता ने रांझू का विवाह भी

अपनी जाति की एक सुन्दर तथा सुलक्षणा युवती से कर दिया था, परन्तु जब तक "रांझू" अविवाहित था, तब तक 'फुलमों' केवल इसी आस पर जीवित थी, कि "रांझू" एक मात्र उसी का है तथा किसी अन्य का उस पर कोई अधिकार नहीं। परन्तु "राँझू ने" यह जानते हुये भी कि मैं ने फुलमों को जीवन भर केवल उसी का रहने का वचन दिया है, जब स्वयं ही एक दूसरी कन्या के साथ अपने विवाह रचाने की अनुमति दे दी, तब "फुलमों" अपने प्यार के इस अपमान को न सह सकी, और इसी पीड़ा से अधिक व्याकुल हो कर उसने प्राण त्याग दिये।

रांझू ने फुलमों की पवित्र प्रीति को तोड़ कर अपने हृदय में किसी और को भले ही बसा लिया था, परन्तु कांगड़ा की घाटियों में छिपे वे गाँव आज भी 'फुलमों' की मृत्यु के उस करुण दृश्य को कैसे विस्मृत कर सकते हैं, जब एक ओर से "रांझू" की बरात जा रही थी और दूसरी ओर से ठीक उसी समय पर "फुलमों" की अर्थी ने उसकी बारात का राह में चलते हैं, स्वागत किया था।

फुलमों आज काँगड़ा की इन पहाड़ियों के बीच नहीं है, परन्तु उसकी दर्द भरी याद अब भी इस क्षेत्र में इस प्रकार के करुणा-युक्त लोक गीतों का रूप धारण कर के कभी कभी जाग उठा करती है—

गल्लाँ होइयां बीतियां बो राँझू
गल्लां होइयां बीतियां
ग्वाड़े पिछवाड़े कजो लकदी
झांका कजो मारदी

बूटणो　　बे　　ला　　रांझू
गल्लां　　होइयां··············बीतियां
बूटणा लगावन तेरियां सकियाँ बो भाभियां
सकियां·····················बो　　चाचियाँ
जिन्हां जो तेरे ब्याहे दा चा
बो रांझू गल्लाँ होइयां बीतियां
मैं　　होया　　मजबूर　　फुलमो
तेतों　　दूर······················फुलमो
ब्राह्मणां　　कीता　　मेरा　　नास
फुलमो गल्लां　　होइयां　　बीतियां
जिन्हीं बो ब्राह्मणे तेरा ब्याह रखिया
बो·····················ब्याह　　रखिया
उस दी न पाये परमेशर पूरी
गल्लां　　होइयां···············बीतियाँ

—[अब तो प्रीति पुरानी हो गई है रे रांझू !
अब तो प्रीति पुरानी हो गई है।
तू इधर उधर क्यों लुपती है री प्रियतमा !
क्यों शोक करती है ?
आ अपने रांझू के उबटन लगा।
क्या अब तेरी प्रीति पुरानी हो गई है ?
उबटन तो लगाएं गी रे तेरी सगी भाभियां
और तेरी सगी चाचियां
जिन्हें आज तेरे विवाह का सुख मिल रहा है।
अरे रांझू ! अब तो प्रीति पुरानी पड़ गई है।
मैं तो विवश प्राणी हूँ री फुलमों

तभी आज तुझ से दूर हूँ री फुलमों !
इन ब्राह्मणों ने मेरा सर्वनाश कर डाला है !
फुलमों क्या अब प्रीति पुरानी पड़ गई है ।
जिन ब्राह्मणों ने तेरा यह विवाह रचाया है,
उनका हे प्रियतम ! कभी भला न होगा ।
तभी तो आज प्रीति पुरानी पड़ गई है]

आँसुओं के अतिरिक्त और होता ही क्या है एक बिरहन के जीवन में! बिना प्रियतम की नारी को कब मिलता है मान इस दुनियां में! प्रत्येक पग पर बेचारी को अकेली और अचला जान कर जमाना बस ठगने की ही कोशिश करता है और यदि वह कभी भूल वश ठगी ही जाये तो हमारा यह समाज उसे पतिता समझ कर उसका तिरस्कार कर देता है। वह भटकती है.......चीखती है,..................चिल्लाती है, परन्तु..................उसकी दर्द भरी पुकार कोई नहीं सुनता। और फिर उसे दिन रात हृदय के दर्द से ही खेलना पड़ता है।

किन्तु जब उसी दर्द के तूफ़ान में उसे अपने प्रियतम की याद आती है, तब तो उसकी ऐसी करुण अवस्था हो जाती है, जैसी कि किसी कठोर से कठोर शारीरिक दण्ड के समय भी

कभी किसी की नहीं हो सकती और तब उसे यह भास होता है कि उसके साथ आज जो अन्याय हो रहा है, वह केवल इसीलिये हो रहा है कि उसका प्रियतम उसके पास नहीं है। परन्तु इसमें उस बेचारी का क्या दोष?

पति की अनुपस्थिति में सम्पूर्ण समाज उसका विरोधी बन बैठता है। बिना बात के उसे कलंकित करने का अवसर ढूण्ढता फिरता है। ऐसी अवस्था में उसके अपने भी ग़ैर हो जाते हैं। और उसे लगता है जैसे वह इस संसार में बिल्कुल अकेली है,······उसका कोई सहारा नहीं। और फिर वह आँसू भी न बहाए तो और करे क्या?

परन्तु खुल कर रो लेने का अधिकार भी हमारे समाज ने उसे नहीं दिया। उसके नयनों के नीर देख कर भी लोग जलते हैं। और तो और स्वयँ उसकी सुसराल वाले भी उसे ताने देते हैं, तथा हृदय की हूक से प्रभावित हो कर अपने आप ही व्यथा वश निकल आने वाली उसके आँसू की पवित्र बूंदों को व्यर्थ का ढोंग बता कर उसके अरमानों का खून कर डालते हैं। तथा घड़ी भर आँसू गिरा कर मन को हलका कर लेने का अधिकार भी उससे छीन लिया जाता है। परन्तु फिर भी वह अपने आँसूओं को रोक नहीं पाती। यदि स्पष्ट नहीं तो छुप छुप कर ही रोती है। नयन-पीड़ा की आड़ ले कर रोती है। और नहीं तो केवल धूएं का बहाना कर के ही अपने व्यथित आँसूओं को निकाल अवश्य देती है। एक डोगरी गीत में नारी की ऐसी ही अवस्था का यहाँ अवलोकन कीजिये—

गिल्ले गोटे लाई चुल्हे
धुएं माने रोनी आं
पुच्छे नी ननान कुते
किस दा रो दुख तुगी
कोदे पिच्छे रोई रोई
मिलदा ए सुरत तुगी
धुआं धार पाई
चुल्हे मुण्ड बैठी दी
मैं इन्हें अथरुए दे मोतिएं दे
हार पई परोनियां

—[गीले उपले (कण्डे) चूल्हे में जला कर
धूएं के बहाने ही रो रही हूँ!
अन्यथा मेरी ननद कहीं यह न पूछ ले,
कि तुझे किस का दुख है ?
किस के लिये तू इतना रो रही है ?
जो तुझे इतना सुख प्राप्त हो रहा है !
इसलिये मैंने चारों ओर धुआं ही धुआं कर लिया है !
तथा चूल्हे के समीप बैठी
चुपचाप आंसुओं की माला पिरोती जा रही हूँ !]



युवती नारी यदि विधवा हो जाये तो कितनी दुर्दशा होती है उस बेचारी की। समाज में बैठने के लिये कहीं ठौर तक नहीं मिलता उस निर्बल को! उसकी छाया तक से भी संकोच किया जाता है हमारे समाज में! जमाना उंगलियाँ उठाता है उसके बे-सहारा जीवन की ओर! अनेक स्थानों पर तो उसे जन्म-जन्मान्तर की पापिष्ठा जानकर उसका तिरस्कार तक कर दिया जाता है। कुमायुँ प्रदेश के एक लोकगीत में नारी जीवन के एक ऐसे ही पक्ष का प्रदर्शन यहाँ प्रस्तुत है, जिसमें एक विधवा के करुण क्रंदन की ध्वनि उसके मार्मिक स्वरों में हृदय को छूने का कितना गहरा प्रयत्न कर रही है।

इस गीत को कुमायुँ प्रदेश में "गोपी गीत" के नाम से

याद किया जाता है ! यहाँ के वनों और घाटियों ने अनेक बार सुने हैं इस दर्द भरे गीत के करुण स्वर, और यहां के निवासियों ने आज तक जाने कितने आँसू बहाये हैं इस गीत की व्यथा से तड़प कर।

गोपी एक कन्या थी……… सुन्दरता का अवतार थी अपने क्षेत्र में। एक साधारण परन्तु प्रतिष्ठित ब्राह्मण कुल में जन्म पाया था इस सुन्दरी कन्या ने। जब यह कुछ बड़ी हुई तो तुरन्त ही पिता ने अपने कुल की परम्परा अनुसार एक योग्य वर देख कर इसका विवाह कर दिया, और मां बाप के आश्रय से छूट कर यह भोली भाली कन्या फिर पतिगृह में प्रविष्ट हुई।

किन्तु अभी गोपी जी भर कर पति की ओर निहार भी नहीं पाई थी, कि निर्दयी भाग्य ने उसकी मांग का सिंदूर पोंछ डाला। पलक की झपकी भी न ले पाई थी, कि वह बेचारी विधवा हो गई। और इस प्रकार अपने पहले ही चोट से भाग्य की चोट ने इस अबला को असहाय बना कर सदा के लिए संसार में दुखों से तड़पते रहने के लिए अकेला छोड़ दिया।

भाग्य के इस कुठाराघात ने गोपी के सारे सुख चैन तो छीन ही लिये। दूसरी ओर साथ ही साथ निर्दयी समाज के भयानक पंजों ने भी तुरन्त ही इस अभागिन को अपनी दबोच में ले लिया। कोमल हृदय की यह सुकुमारी तकदीर और समाज के इस कठोर आक्रमण को सहन न कर पाई, और कुछ ही महीनों पश्चात वह एक दिन दुःखों के धुएँ में घुट कर इस संसार से सदा के लिए विदा हो गई।

गोपी समाज की काली कोठड़ी में घुट कर मर गई, परन्तु किसी ने उसकी सिसकी तक न सुनी। सुसराल में उसके साथ क्या क्या अत्याचार और अन्याय हुए थे यह भी कोई जान नहीं पाया।

कहते हैं कि गोपी के पिता को अपनी इस सुन्दरी पुत्री से बड़ा प्यार था, विवाह से पूर्व अपने आश्रय में उसने गोपी के मुख पर उदासी की कोई भी रेखा कभी उभरने न दी थी, और न ही कभी उसने अपनी शीतल छाया से ही कभी उसे अलग होने दिया था।

विवाह के पश्चात जब गोपी सुसराल जाने लगी तो प्रेम की उसी पीड़ा मे व्याकुल होकर उस के पिता ने आंसू बहाती और चीखती हुई गोपी की धीर बन्धाने के लिए उस से कहा था, "तुम जल्दी जल्दी आया करना यहां, क्योंकि हे गोपी! तुम्हारी विलगता का यह शोक मुझ से सहा नहीं जायेगा।" परन्तु ममता के उस मौन देवता को भला यह क्या पता था, कि 'गोपी' अब उसके घर कभी लौट कर न आयेगी! उसकी छाया को छूने का अवसर भी अब उसे कभी प्राप्त न होगा!

जिस समय उसने गोपी की दर्द भरी मृत्यु का समाचार सुना तो वह तड़प उठा। परन्तु वह मजबूर किसी से क्या कहता। यदि किसी से कहने से ही उसकी दुलारी गोपी वापिस लौट सकती तो वह अवश्य ही ऐसा करता, परन्तु अब तो यह सम्भव नहीं था, इसलिये आत्मा की तड़पन को छाती में ही छुपा कर एक असहाय की भांति धीरे धीरे जलता रहा। पर गोपी की भटकती

हुई आत्मा से अपने पिता की यह करुण अवस्था देखी न गई, और तुरंत ही एक दिन रजनी की उस मौन वेला में जब कि सारा संसार सोया पड़ा था, गोपी की दुखी हुई आत्मा ने अपने पिता को स्वप्न में दर्शन दे दिये। दो तीन दिन तक नित्य रात्रि के समय यही क्रम चलता रहा। इन्हीं दिनों में अपनी दुःख भरी कहानी गोपी ने अपने पिता को सुनाई थी, जिसे सुन कर मारे पीड़ा के उसकी आत्मा चीत्कार भर उठी। उसका हृदय हूँकें मारने लगा और वह बिलख उठा। और जब दर्द की मात्रा इतनी बढ़ गई कि जिसे वह सह न सका, तो एक दिन रात के समय कुमायुँ प्रदेश की किसी शुष्क चट्टान पर बैठ कर वह अपनी दुलारी बेटी गोपी की दुःख भरी गाथा अपने हृदय स्पर्शी स्वरों में गा उठा। कि इसी से उसके हृदय का बोझ कुछ हलका हो जाये और उसके घुटते हुए प्राणों को कुछ देर के लिए सांत्वना मिल सके।

गोपी आज इस संसार में नहीं है और न ही उस कवि का वह अस्तित्व शेष है इसी धरती पर, जिसने अपने दर्द भरे स्वरों में पिरो कर जब एक दिन गोपी की पीड़ा को कुमायुं की शुष्क पहाड़ियों पर बिखेर दिया था, तो वहां की पत्थरीली चट्टानें भी द्रवित हो उठी थीं। परन्तु कुमायुँ प्रदेश के बच्चे बच्चे को उस अभागिन नारी का वह गीत अपने इन्हीं दर्द भरे स्वरों में अभी तक याद है। आज भी किसी सुरीले कण्ठ से जब यह गीत वहां कभी गूँज उठता है, तो पहाड़ों की छातियां भी कांप उठती हैं।

गीत के बोलों में अभागिन गोपी अपने पिता को अपनी सुसराल में मिलने वाली यातनाओं की कहानी सुनाती हुई कहती है—

फुटी गयो भाग जैको
कटि गयो गलो
विधवा चेहड़ि को बोज्यू
मरणो छौ भला
विधवा चेहडि घर
जहर को डलो
विधवा चेहडि को बोज्यू
मरणो छौ भलो

× × ×

शतुर का घर लग जन हो चेहडी
मरिया ज्यूना की तैकी फिकर छौ बड़ी
दिन रात रूणों धूणों विधवा को राग
विधवा है बेर मलो स्यूं पालणों बाघ
स्यूं बाघ लै खाई दियो तै बखतै मौत
विधवा की बडी डर पछिल लै मौत
बिन बातै नौं पड़नी बिगर कसूर
भाई भौज दिक दूनी सास लै ससर

× × ×

यक जैसो मन कैको नी रौनी कै घडी
बची बेर के करली विधवा चेहडी
बण घर जब जाली लागि जाछौ आंखो
दुध का गिलास में न पड़ी जाछौ माखो
बिगडिगे बात जब, होई जैछौ हँसी
सौराशी मैती का मुख लगी जांछौ मसी

× × ×

आइ जाछौ एक दिन
पराण को काल
दुनियां को कार बार
सब छौ यो जाल

× × ×

जति तती के बखते
ईजा मेरी रौली
दुश्मण खुशी होला
मार देला बोली
सुण मुण सुण मुण
हाइ गोपी ! कौली
तैंका रौणा देखी बेर
फिकर है रौली
दश माश ऊले
बांको तेरी दरक
ईजा बौज्यू दुख दीणों
की मेरो नरक

× × ×

ईजा बाटी देख रौली
गोपी आली आली
जै बाटी सौगरा गेयों
तै..........बाटी चाली
ऋतु मास पलटना
गोपी जैके आली

जांग लग बचली ईजा तां
लै .... बाटी चाली

× × ×

जै बखत चैत मास
नों लुकड़ि ल्याला
मेरा बल तै बखत
आई जालो ख्याला
सारा गों की चली बेटी
आई जाला मैत
फूल टिपी सब चेली
खेलला ग्वां चैत
हियो भरी आलो बापू
तुमरो तै घड़ी
आंखों मैंज लागी गाली
सावन .... की झड़ी

× × ×

जनम ल्ही बेर बौज्यू
मैं होयूँ .... शतुरा
तुलसी का थावल में
उपजो .... धतुरा

× × ×

कागज़ ल्ही बेर बोज्यू
कलम .... दवात

मूलुक सुधाई दिया
गोपी की कचात
योई मेरी गया काशी
योई घ सराद
पोथी बणै छपै दिया
बाँटिया..............खैरात

× × ×

कतुक पण्डित होया कुमायां गढ़वाला
ढेपुआ कमाई गेईं भात खैगेईं दाला
मूलुक सुधार में यां नी बांधी कमर
बाबा जु को नाम रौलो दुनियां में अमर

—[जिस की तक़दीर फूट गई है,
और जिसका गला कट चुका है,
उस विधवा कन्या के लिये हे पिता !
मरना ही श्रेष्ठ है।
विधवा पुत्री तो घर के बीच,
विष के टुकड़े के समान अभागिन हुआ करती है।
इसलिये विधवा पुत्री की, हे पिता !
मृत्यु ही अच्छी होती है।

× × ×

दुश्मन के घर भी किसी कन्या का जन्म न हो।
इसकी चिन्ता के मारे तो दिन रात शोक ही बना
रहती है।

क्योंकि दिन रात रोने धोने में ही विधवा का
अनुराग भरा होता है।
विधवा का पोषण करने से अधिक पुण्य तो शेर
और बाघ पालने का है।
क्योंकि शेर यदि खा ले तो तुरन्त मत्यु आ जाती है
परन्तु विधवा का भय तो मृत्यु के पश्चात भी
बना रहता है।
बिन बात तथा बिन अपराध भी उसके चरित्र
पर आरोप लगाये जाते हैं।
तथा भाई भावज या सास ससुर के तानों से उस
का दुख बढ़ता ही जाता है।

× × ×

किस का मन सदा एक सा रहता है,
और फिर पतिहीन पुत्री तो होती ही किस योग्य है !
घर बाहर जब भी जायेगी, तो किसी न किसी
की कुदृष्टि पड़ ही जायेगी,
जिस प्रकार दूध के गिलास में मक्खी पड़ जाती है।
तब तो सारी बात ही बिगड़ जायेगी तथा हर ओर
हंसी होगी
और इस तरह मां बाप और सुसराल वालों के
मुख कलंकित हो जायेंगे।

× × ×

वैसे भी किसी न किसी दिन,
जीवन की अन्तिम घड़ी आ ही जाती है

क्योंकि संसार का यह समस्त झमेला,
केवल एक धोखा मात्र है ।
कभी यहां कभी वहां प्रत्येक घड़ी,
मेरी माता रोया करेगी ।

× × ×

और तब जो दुश्मन हैं, उन्हें बड़ी प्रसन्नता होगी,
तथा वह व्यर्थ में ही बोलियां मारेंगे ।
मां सिसकियां भर कर कहेगी,
हाय गोपी ! हाय गोपी !
तब उस का रुदन देख कर,
तुम्हें धक्का लगा करेगा ।
परन्तु जिस ने दस महीने तक गर्भ में मुझे रखा था,
उसकी पीड़ा तो उसे ही ज्ञात होती है ।
तो भी हे मां ! और हे पिता तुम्हें मैंने दुख ही दिया है ।
मेरे लिये इस से भयानक नरक और क्या होगा

× × ×

राहों को देख कर मेरी माता यह सोचेगी,
कि गोपी अब आने वाली है ।
जिस पथ पर होकर मैं सुसराल गई थी,
वह निरन्तर उसी पथ को निहारा करेगी ।
ऋतुएँ और मास बीतते जायेंगे,
परन्तु फिर भी वह यही सोचेगी कि गोपी अवश्य आयेगी ।

और जब तक उस के शरीर में प्राणों का संचार
रहेगा,
तब तक वह मेरे आने की प्रतीक्षा अवश्य ही करती
रहेगी ।

× × ×

जब चैत्र मास का आगमन होगा,
और अपने साथ नवीन वस्त्रों का त्योहार लायेगा ।
तो मेरे पक्ष का भी उस घड़ी,
उसे ध्यान अवश्य ही आ जायेगा ।
सारे गांव की सभी बाली-बेटियां फिर,
अपने अपने मां बाप के घर आ जायेंगी ।
और फिर सभी बालिकाएँ पुष्प चुन कर !
चैत्र में 'चैती' का पर्व मनाएँगी ।
तो उस घड़ी हे पिता !
यह सब कुछ देख कर तुम्हारा हृदय भर आयेगा ।
और तुम्हारी आंखों से रे तात!
सावन के मेघ फूट पड़ेंगे ।

× × ×

इस लिए यह जन्म लेकर, हे पिता !
मैं आप की ऐसी ही शत्रु प्रतीत हुई हूं ,
जैसे तुलसी के चौरे में
कोई धतूरा उपज आया हो ।

× × ×

इस लिये हे पिता ! अब काग़ज़ लेकर,
और क़लम दवात उठा कर !
इस देश के खण्ड खण्ड को सुना दो
अपनी 'गोपी' की दर्द भरी कहानी
तुम्हारे लिये यही मेरा गया और काशी का धाम
बन जायेगा ।
और यही आपकी ओर से किया गया मेरा पुण्य
श्राद्ध होगा ।
इस का ग्रन्थ बना कर छाप देना
और दान रूप में जन जन के बीच बांट देना ।

× × ×

वैसे तो कितने योग्य पुरुष हुए,
इस कमायूँ और गढ़वाल के प्रदेश में ।
किन्तु ये समाप्त हो गये धन कमा कर ,
और उदर के चाव पूरे कर के ।
किन्तु देश का उद्धार करने के लिये,
किसी ने पग नहीं उठाया ।
परन्तु तुम्हारा नाम तो ऐसा करने से, हे पिता !
इस धरती पर सदा के लिये अमर हो जायेगा ।]



यदि गीत न होते, तो मानव हृदय सम्भवतः दुख की पीड़ा से तड़प तड़प कर अन्त में फट पड़ने को विवश हो ही जाया करता। परन्तु यह गीत ही हैं, जो वियोग की कड़ी से कड़ी यातना को सह पाने की क्षमता उसमें भरते हैं, तथा एक आस का सहारा देकर उसे निरन्तर अपने प्राणों को सुरक्षित रखने की प्रेरणा देते हैं कि आज नहीं तो कल तो उसके दिन अवश्य ही फिरेंगे। और तब दुख के इन दर्द भरे दिनों की उसे भूल कर भी याद न आयेगी।

यहाँ ही देखिये.......पंजाब की एक प्रियतमा को, जिसके हृदय में प्रियतम मिलन के प्रति आने वाले प्रत्येक दिन के बीच कितनी आस भरी है। वह जी रही है, केवल इसी आशा के आधार

पर कि यदि आज का दिन व्यर्थ ही चला गया, तब कल तो उसे अपने साजन का मिलन अवश्य ही प्राप्त होगा। प्रत्येक घड़ी वह निहारा करती है--चिट्ठी लेकर आने वाले डाक-कर्मचारी को कि शायद आज ही वह उसके प्रियतम के आगमन का हृदय को सुख पहुंचाने वाला सन्देशा उसे दे जाए। और जब भी वह उसके प्रियतम की चिट्ठी ला कर उसे दे देता है, तब उसे बड़ा सुख मिलता है और उसी सुख मे किसी एकान्त स्थान पर जाकर जब वह शीघ्रता पूर्वक उस चिट्ठी को पढ़ती है, और वहाँ उसे प्रियतम के आने की कोई भी बात लिखी दिखाई नहीं देती, तब उसे बड़ी झुँझलाहट सी होती है। सोचती है, कि उसके प्रियतम ने अपने आने के विषय में तो इस पत्र में कुछ लिखा नहीं, फिर किस से पूछूँ! कि मेरे साजन कब आयेंगे, परन्तु इतनी बात वह अवश्य ही सोच लेती है, कि कभी न कभी तो वह आयेंगे ही, और अपनी झुँझलाहट को हल्का करने के लिये वह गा उठती है :—

काले काले बाग' विच कोयल बोलदी
चिट्ठी तां आ गई मेरे बाँके ढोल दी
बैठ चुबारे नी मैं चिट्ठी नूँ फोलदी
एहो दुख डाढा मूँहों चिट्ठी न बोलदी

—[बागों में काली काली कोयल बोल रही है,
कि मेरे सलोने साजन की चिट्ठी आ गई है।
किन्तु उस चिट्ठी को चौबारे पर चढ़ कर जब मैं पढ़ती हूँ,
तब सब से भारी दुख यही लगता है, कि जो मैं चाहती हूँ,
उसे यह चिट्ठी मुझे नहीं बताती।]

वियोग की घड़ियाँ विरहन के लिये बड़ी दुखान्त होती हैं। नयनों की नींद भी जाने कहाँ चली जाती है! भाँति भाँति के दुखदाई विचार उसके मन में प्रत्येक क्षण उठते रहते हैं। और जब उसका धीरज बंधाने वाला कोई नहीं रहता तथा उसके प्रियतम की ओर से भी दुख सुख का कोई समाचार उसे नहीं मिलता, तो दुख के साथ साथ उसका मन अनेक प्रकार की शंकाओं में लीन हो कर उस की विरह पीड़ा को दूना कर देता है।

इस पीड़ा को वह सहन नहीं कर पाती, परन्तु कर भी क्या सकती है? और फिर नयनों में आँसू भर कर वह कभी कभार गा ही लेती है। गीत के अतिरिक्त उसे अपने निकट डूबते हुए हृदय को थाम लेने वाला अन्य कोई भी सहारा दिखाई नहीं पड़ता।

एक बिरहन को देखिये, जिसे जाने कितनी मुद्दत से अपने साजन के दर्शनों का सुख प्राप्त नहीं हुआ, और न ही इस वियोग-पूर्ण काल में उसकी ओर से कोई राजी खुशी का हृदय को तसल्ली देने वाला सन्देश ही उसे कभी प्राप्त हुआ है। ऐसी अवस्था में यदि अपने प्रियतम के प्रति उसके मन में किसी प्रकार का कोई सन्देह या भय उत्पन्न हो जाये तो यह स्वाभाविक ही है, इसी लिये तो वह सोचती है, कि मुझ नसीबोंजली को बिसार कर मेरे प्रियतम ने कहीं परदेश में किसी अन्य स्त्री से तो प्रीति का नाता नहीं जोड़ लिया! अन्यथा मुझे अपने सुख दुख के दो बोल भी क्या वे नहीं लिख पाते। परन्तु जब उसे प्रियतम के साथ बिताये हुये पुराने दिनों की याद आती है, तो सन्देह की डोरियाँ एक एक करके स्वतः ही कटती जाती हैं, और उसे लगता है, जैसे यह असम्भव है— उसका प्रियतम केवल उसी का है— वह उसी के दुख दूर करने की खातिर उस से दूर रह कर परदेश की यातनाएँ झेल रहा है, अन्यथा उसे क्या पड़ी थी, जो वह अपना घरबार छोड़ कर अपनी इस प्रिया से इतनी दूर जा बसता। और ऐसा सोच कर उसके दुखिया हृदय को कुछ क्षणों के लिये जीने का सहारा मिल जाता है। और वह सोचती है, कि मेरे साजन भले ही मुझ से हजारों कोस के अन्तर पर रहें, परन्तु यदि वह मुझे नहीं भुला पाते, तो मुझ सी बड़-भागिन फिर इस संसार में और कौन है।

गोंड समाज की एक विरहिणी ललना के प्रियतम-भक्ति से ओत-प्रोत ऐसे ही उद्गारों को इस गीत में जरा देखिये—

भली साइत का चलना होइगा
अमरित भरा सरीर
तुम साजन मोहिं कबउँ न बिसरे
चाहे बसा हजारिन कोस

—[शुभ क्षणों का प्रस्थान तभी होगा,
और यह शरीर भी तभी कृतार्थ होगा
जब आप मुझे कभी न भुलाओ रे साजन !
भले ही तुम मुझ से हज़ारों कोस के अन्तर पर जा
बसो ।]



परदेसी की प्रीति एक बुलबुले की भांति ही अस्थायी होती है किन्तु फिर भी उसमें एक अनोखा आकर्षण होता है, जिस पर प्रत्येक का मन रीझ उठता है, और इतना कोई नहीं सोच पाता, कि यह तो चार घड़ी की चन्द्रिका है, इसलिये अंधेरी रात फिर आ जायेगी। परन्तु जिसका नेह लग जाता है; वह उसका आदि अन्त फिर नहीं सोचता। वियोग के आगमन पर ही उसे यह ज्ञान होता है, कि यह तो परदेसी की प्रीति थी, जो टूट गई। और जो अब कभी भी जुड़ न सकेगी। भला अब कौन आयेगा इस देश में उसकी टूटी हुई प्रीति को जोड़ने के लिये।

जाने कौन सी परिस्थिति होती है, जिस से मजबूर हो कर मानव अपना घर बार छोड़ कर परदेसी बनता है! परन्तु

परदेसी बन जाने पर यह तो सम्भव नहीं, कि उसे अपने घर की याद भी कभी न आये ! घर की याद तो उसे निरन्तर आया करती है, यह ठीक है कि परिस्थितियों के पाश में फंसा हुआ वह बेचारा कुछ कर नहीं पाता, परन्तु जब भी वह उन पर विजय प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है, तब वह अपने परदेसी-पन का बाना उतार कर पुनः घर को लौट जाता है !

फिर कौन जाने कि उस पर ऐसी ही परिस्थितियाँ कभी आयें या न आयें, जिन से ऊब कर उसे फिर परदेसी बन कर विदेश को जाना पड़े ! क्या भरोसा इसका ! तो फिर यह भी कैसे सम्भव हो सकता है कि किसी की कोमल प्रीति को अपने निर्दयी कदमों में रौंद कर गया हुआ परदेसी उसे जीवन-दान देने के लिये अब पुनः लौट कर आयेगा। इसी विषय से सम्बन्धित ब्रज की एक लोक कहावत है—

परदेसी की प्रीति को
सब का मन ललचाय
द्वै ही जा में खोट हैं
रहै ना संग लै जाये

—[परदेसी से प्रीति जोड़ने को,
हर एक का मन ललचाया करता है,
परन्तु इस में दो ही खोट होते हैं,
कि यह न तो इस देश में ही रहता है, और ना
ही अपने देश में ही किसी को साथ ले जाता है।]

नारी का हृदय जब रोता है, तो वह स्वयं ही नहीं रोता अपितु जगत भर को रुला डालने में उसकी पीड़ा समर्थ होती है। और यदि उसकी पीड़ा का स्रोत वियोग बन जाये, तब तो मानव हृदय के खण्ड खण्ड तक कर डालने की शक्ति उसकी इस पीड़ा में भर जाती है।

विरहिणी का हृदय प्रत्येक क्षण ग्रीष्म की दोपहरियों की तरह तपा करता है। उसमें निरन्तर जेठ मास की लूओं के तूफ़ान अग्नि बरसाया करते हैं। सावन की ठण्डी फुहार और भादों की मस्त बयार भी उस में शीतलता का फिर प्रवेश नहीं कर पाती और ऐसे में जब वह गा उठती है, तो लगता है, जैसे सावन की बूंदों से भी चिंगारियां चटखती हुई गिर रही हैं।

एक ललना को देखिए, जिस ने कभी किसी परदेसी की प्रीति से अपनी आशाओं की डोरियां जोड़ ली थीं, और जिन में उलझी हुई वह किसी मतवाले पंछी की भांति नृत्यमग्न रहा करती थी। परन्तु आज वह उदास है, अंगहीन कर के जैसे किसी ने उसके सारे नृत्य उससे छीन लिये हैं। उसका चेहरा उतरा हुआ है। क्योंकि उसका परदेसी प्रियतम अब नहीं है उसके पास ! आज उसके प्रेम की सारी डोरियां टूट कर बिखरी पड़ी हैं।

कितने अरमानों को अपने अन्तर में सजा कर इस नादान ने अपनी एक छोटी सी प्रेम नगरी बसाई थी। और एक अनजान परदेसी को वह उस नगरी का देवता मान बैठी थी। परन्तु आज उसका मन्दिर सूना पड़ा है, ...उसकी नगरी में आग लगी हुई है।

परदेसी भला मीत ही किसके होते हैं ! किसी पर रीझ कर वह प्रीति तो जोड़ लेते हैं, परन्तु उसे निभा नहीं पाते, और फिर चुपके से छुपकर निकल जाते हैं............किसी की दुनियां में आग भर कर,..........और छोड़ जाते हैं उसे अकेला............ जीवन पर्यन्त उस आग में सुलगते रहने के लिये।

निम्नलिखित गीत में एक हिमाचली बिरहन को प्रीति की इसी विरहाग्नि में तड़पते हुए तो जरा निहारिए—

उंचियां पहाड़ियां कूंजां रे बोले
ते पुकारे कुरलाँ दी रो
हौल्यां हौल्यां तेरियाँ यादाँ तड़पावे
दिल विच पौन्दी खोह

जिन्द मेरिए..................ओ
नीले गगन पै बदलाँ दी टुकड़ी
सौणाँ दी बरसां चो रो
नालू परणालू छल छल वगदे
खिच्च खिच्च जिन्दड़ी रो
जिन्द मेरिए..................ओ
दान्वियाँ बाधलदियाँ उचियाँ पहाड़ियाँ
विच्च विच्च दरियाँ दी रो
हरियां लो दुभाँ ढाबलियाँ भरियां
परणालुआँ दी छछ छछ हो
जिन्द मेरिए..................ओ
यह देख देयाँ ज्यूड़ा जली जांदा मेरा
खड़ी विच्च धाराँ हौं रो
बरसाँ लो गुजरियाँ अजर्के मनी आया
क्या मिंजो भूलि गईरा लो
जिन्द मेरिए..................ओ
सतलुज धारां छल छल बहदियाँ
सन्देशड़ा मेरा लै जान्दियाँ
अखाँ दा पाणी इन्हां विच बगदा
हौं छम छम रोऊँ लो
जिन्द मेरिए..................ओ
दिन ध्याड़े जवानियाँ लो लुट गई
पुट गई, लुट गई.........हो
सूख गईयाँ अखियां
बुझ गइयां दयुठियां

मेरी लो हो गई.................हो
जिन्द मेरिए.....................ओ
हाड़ महीने दा हड़ लो हड़ गया
हुण रिम-झिम सावण ओ
दिल विच अग्ग अखियां विच पाणी
दिवाणी हों लुट गई...............लो
ओ जिन्द मेरिए.....................ओ

—[इन ऊँची ऊँची पहाड़ियों पर कूँज पंछी शब्द सुनाता है,
कि यह झरने तुम्हें पुकारते हैं,
और धीरे धीरे तेरी याद आकर सता रही है
और इस दिल में घाव पड़ते जा रहे हैं।
हां ! मेरे जीवनाधार हां !
नील गगन पर बादल की जो टुकड़ी मंडरा रही है,
वह सावन के मेघ की भांति अब बरस उठी है,
और यह छोटे छोटे नदी नाले छलछला कर बह उठे हैं
और मेरे प्राणों को भी अपने साथ ही खींच कर लिये
जाते हैं।

हां ! मेरे जीवनाधार हां !
विशाल काय मेघों की भांति यह ऊँचे ऊँचे पर्वत,
जिन के बीच अगणित नदी नाले बहे चले जा रहे हैं।
और हरी हरी दूब से हर ओर बहार छाई है।
परनाले कल कल करते बह रहे हैं।
सच रे साजन, हां सच !
किन्तु इन सब को निहार कर मेरा अन्तर जला जाता है।
और इन घाटियों के बीच मैं अश्रुपात करती फिरती हूँ।

जाने कितने वर्ष बीत गये तुम्हें गये हुए, किन्तु
अभी लौट कर तुम नहीं आये ।
क्या मुझे भुला दिया है तुम ने ?
क्यों मेरे जीवनाधार क्या यह सच है !
आ देख, कि 'सतलुज' नदी की धारें किस प्रकार
छलछलाती फिर रही ।
और मेरा विरह-सन्देश तुम तक पहुँचाने का यत्न
करती प्रतीत होती है ।

मेरे नयनों का जल भी आज इन में ही बहा चला जाता
क्योंकि इसी के तीर पर बैठ कर तो मैं छमछम रो रही हूँ
आ देख रे मेरे जीवनाधार, आ देख !
दिन दिहाड़े ही तू मेरे यौवन को लूट कर चला गया
और अब मैं तबाह हूँ, बरबाद हूँ ।

निहारते निहारते नयन भ सूख गये हैं, और इन का
प्रकाश अब बुझा जाता है

हाय ! मेरा तो सर्वनाश अब हो चुका है ।
हा रे ! प्रियतम, हा !

आषाढ़ मास की आंधियां भी अब तो बीत गई ।
अब सावन ही हर ओर रिमझिम करता फिर रहा है ।
मेरे हृदय में इन्हें निहार कर अग्नि प्रवेश कर रही है,
और इसी सन्ताप में नयनों से जल बह रहा है
और मैं पगली ! आज अपना सर्वस्व लुटाये बैठी हूँ,
अरे ओ निर्दयी साजन ! अब तो मेरी पुकार सुन । ।

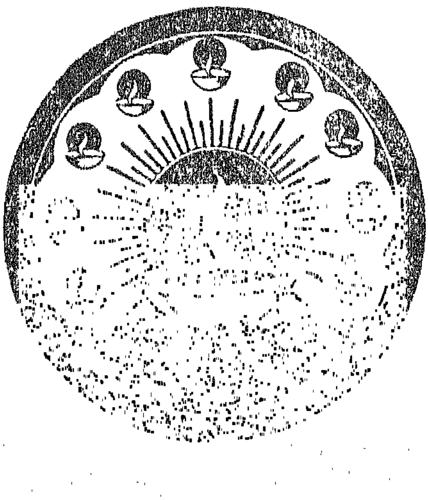
ज्यों ज्यों बरसात निकट आती जाती है, त्यों त्यों विरहिणी का विरह तीव्र ही होता जाता है। सोचती है, "क्या यह काले काले मेघ भी मेरे साजन के हृदय में मुझ से मिलने के लिये हल-चल उत्पन्न नहीं कर पाते"? और जब वह अपने छोटे से पुराने घर को वर्षा के ज़ोर से टपकता हुआ देखती है, तब तो वह और भी अधिक वेग से चौंक उठती है— और उसे लगता है, जैसे मेरे ही तरह मेरे साजन भी कहीं परदेस में इसी प्रकार ही न भीग रहे हों। इस विचार के आते ही वह व्याकुल हो उठती है, और सोचती है, कि यह बदलियाँ भी कितनी बैरिन बन बैठी हैं आज मेरे लिये, कि जिस प्रकार यह मुझे इस देश में घर के बीच भी भिगोए डाल रही हैं, तो परदेस

में फिर मेरे साजन को अपने सजल स्पर्श से रहित इन्हों ने कब रखा होगा। और ऐसा सोचते सोचते उसके अन्तर में एक सजल भाव-रेखा सी काँप उठती है, जिस से अकुला कर उसके नयन भर आते हैं और कण्ठ अपनी दर्द भरी वाणी में धीरे से कुछ गा उठता है—

घेरि घेरि आवे पिया
कारी रे बदरिया
देव बरसे हो बड़े बड़े बूंन
बदरिया बैरिन हो
सब कोई भीजेला अपने भवनवां
मोरे पिया हो भीजे परदेस
बदरिया बैरिन हो
दुलहिन हो रानी
चिट्ठी लिखि भेजे
घर बहुरहु हो ननद जी के भाय
बदरिया बैरिन हो।

—[घिर घिर कर आती है रे पिया !
यह काली काली बदली,
यह बदली मेरी बैरिन हो गई रे !
सब कोई अपने भवनों में भीगते हैं,
मेरे पिया जी भीगें परदेस में रे !

यह बदली मेरी बैरिन हो गई रे !
दुलहन रानी (बहू रानी) ने देखो,
अपने पिया को पत्र लिखा है
कि मेरी ननद के भ्राता ! अब तो घर आ जाओ,
यह बदली मेरी बैरिन हो गई रे ।]



गीत एक हूक होती है, जो मानव हृदय से अपने तीव्र वेग में जब प्रवाहित हो उठती है, तो उसके कण्ठ में निहित स्वर लहरी से भीग कर वहां से फूट पड़ने को व्याकुल हो जाती है, और तभी गीत का जन्म होता है।

यह गीत चाहे जहाँ के भी हों, वहाँ की सभ्यता और संस्कृति की स्पष्ट छाया इन में देखने को मिलती है। सचमुच ऐसे ही गीतों को सुन कर हमें जीने की प्रेरणा मिलती है। इन गीतों पर अपनी राय प्रकट करते हुए एक बार महामना पं० मदन मोहन मालवीय ने लिखा था—

"इन गीतों में बहुत रस, बहुत मिठास और मन पर चोट करने वाले भाव बड़ी सरल भाषा में भरे हुए हैं। जा

लोग कविता के हृदय को पहचानते हैं, या जिन्हें हमारे गाँवों में बसने वाले सीधे और भोले भाले भाई और बहनों के जीवन का कुछ भी ज्ञान है, वे इन में उनके दुःख सुख, मान अपमान, उनके मन की कामना तथा धर्म में रत भावों के उद्गारों का बहुत मिठास पाएँगे।"

किन्तु यह गीत केवल मीठे ही नहीं होते, अपितु मानव के कठोरतम हृदय को पानी बना देने में भी इन के बोल पूर्ण-रूपेण समर्थ होते हैं। एक विरहिणी ललना के इसी गीत में देखिये जो बरसात के महीने में प्रियतम वियोग से पीड़ित हो कर अपने दुःखे हुए शब्दों में कहीं धीरे से कभी गा उठती है—

बरसात में कोई घर से न निकले
तुम ही अनोखे देखे पियरवा
सास भी बरजे, ननद भी बरजे
हम बरजें मति जाओ सँवरिया
असाढ़ में बादर आये घन घोर के
तो सावन में गड़े हैं हिंडोले सँवरिया
सावन में गड़े हैं जो हिंडोले पियरवा
तो भादों की रयनी अँधेरी सँवरिया
अकेले मोहे डर लागे सँवरिया

—[बरसात में कौन घर से परदेस जाता है रे !
किन्तु हे पिया ! इस बात में एक तुम ही अनोखे दीख पड़े।
सास भी पुकारती है, ननद रानी भी पुकारती है,

किन्तु मेरी पुकार तो केवल यही है रे साजन ! कि तुम घर से जाते ।
देखो तो ! आषाढ़ मास में यह बादल कैसे घिर घिर कर आए थे,
और फिर आया सावन, तो हर ओर झूले पड़ गये रे साजन ।
और सावन में तो केवल झूले ही पड़े थे रे पिया !
परन्तु इस भादों में तो रातें भी चंद्रिका-हीन हो गई हैं रे प्रियतम !
और ऐसे में यह अकेलापन मुझे बड़ा भयभीत बना रहा है ।]



वैसे तो लोक गीतों ने मानव जीवन और प्रकृति के प्रत्येक अंग का स्पर्श किया है परन्तु इन में वर्षा और शृङ्गार का जितना अधिक वर्णन देखने को मिलता है, उतना अन्य किसी भी चीज का दिखाई नहीं पड़ता।

विरह में लीन गीतों ने भी अधिकाधिक वर्षा की रिमझिम में सज कर ही अपना जन्म प्राप्त किया है। यों तो हमारे समाज में अनेक भोली भाली नारियां ऐसी होती हैं, जिन बेचारियों को अनेक वर्षों तक अपने प्रियतम की छाया से दूर रहना पड़ता है, और वे सुकुमारियां जैसे तैसे इस दुखदाई अवधि को काटती भी हैं, परन्तु जब बरसात आती है, तब उनका हृदय इस बात को सहन नहीं कर सकता कि इस ऋतु की सुहानी

बहार का स्पर्श पा कर जब अपने पावन पिया की सुरत में उनका अंग अंग अंगड़ाइयां ले रहा हो, तो उन्हें निहारने के लिये उनके प्रियतम उनके पास न हों। और तब वे सिसक उठती हैं और गा उठती हैं धीरे से अपना दर्द भरा विरह गीत, ताकि इसी से उनकी साजन-सुरत की कठोर पिपासा कुछ शा.त हो जाये। अवध-प्रदेश के एक गीत में एक ऐसी ही बिरहन का क्रन्दन सनिए—

सुधिया न कीन्हें राजा
हमरे सुरत की
अपुआ तो जाय के
बिदेसवा में छाये
पतिया न लिखे राजा
हमरे न मन की
जो सुधि आवे राजा
तुम्हरे सुरति की
अँसुवा बहें जैसे
नदिया सवन की

—[हे राजा ! तुम ने तो खबर भी न ली,
मेरे पिया-चिन्तन की
आप तो जा कर रे निर्दयी !
विदेश में बस गये।
परन्तु हे साजन ! तुम ने तो पत्र भी न डाला,
मेरे मन को सांत्वना देने के लिए !
जब याद आती है, रे साजन !
तो आंसू इस प्रकार बह उठते हैं
जैसे सावन में नदियां बह उठती हैं]

मानव हृदय जब जीवन के निरन्तर उतार चढ़ावों की यातनाओं को झेलते झेलते थक जाता है, और उसकी भांति-भांति की जटिलताओं एवं संघर्षों से दुःखी हो कर जब वह असंतुलित हो जाता है, तो उस समय गीत ही आकर उसके खोए हुए संतुलन को पुनः उसके जीवन में भरने का हृदय-स्पर्शी कार्य करते हैं, और इस प्रकार उसके हृदय-भार को हल्का कर के उस को चलने की प्रेरणा देते हैं। क्योंकि जीवन की पृष्ठ-भूमि में कभी कभी अनेक शूल ऐसे भी जन्म ले लेते हैं, जिन की चुभन को मानव किसी से जा कर कह नहीं कह पाता। तब ऐसी पीड़ा का दमन करने के लिये जीवन मार्ग में यह गीत ही उसके सच्चे साथी होते हैं।

एक पंजाबिन विरहिणी को देखिये, जिस का प्रियतम अंग्रेज़ी सेना में भरती हो कर उस से दूर चला गया था। और अब उस के वियोग में जाने कैसे कैसे दुःखी विचार उस के हृदय में प्रत्येक घड़ी उभरा करते हैं। एक "गिद्दा गीत" में उस के भावों का आलापन सुनिए —

सुण वे फ़रंगिया सधरां मेरियां
मैं तैनूँ आख सुणावां
दे छुट्टी मेरे ढोल सिपाही नूँ
धा गल वकड़ी पावां
मखणा दे नाल पल्ले माही नूँ
मैं कदी ना रैफ़ल फड़ावां
हाकमां सुण ! तरस करीं
तेरा जस गिद्दे विच गावां

—[अरे ओ अंग्रेज़ हाकिम ! तनिक मेरी पुकार भी तो सुन !
आज मैं तुम्हें सुनाने आई हूँ।
अब छुट्टी देदे मेरे प्यारे सिपाही पिया को,
ताकि मैं उसे अपने हृदय से लगा पाऊँ।
माखन खिला कर पाले हुए अपने प्रियतम को,
अब मैं कभी भी तेरी 'राईफ़ल' न उठाने दूँगी।
अरे ओ निर्दयी हाकिम ! तनिक मेरे हाल पर भी तो तरस खाओ,
मैं तुम्हारा यश अपने "गिद्दा गीत" में गाऊँगी !]

चोट खाए हुये हृदय की टीस बड़ी कष्ट-दायनी होती है। इसे दबाने के लिये ही मानव गीत गाता है। अधिक नहीं तो कुछ देर के लिये इन की लहरों में बह कर दुखिया मानव को शान्ति मिल ही जाती है।

हृदय से उठने वाले पागल विचार ही गीतों के प्राण होते हैं और जब यह भाव या विचार अन्तर की ज्वाला के बीच करवटें लेते लेते भली प्रकार पक जाते हैं, तो इनका रूप किसी विशेष प्रकार के रस में परिवर्तित हो जाता है। बुद्धि की अपेक्षा इनका सम्बन्ध हृदय से ही अधिक होता है। यही कारण है कि हमारे व्यावहारिक भाषण की अपेक्षा गीत के भाषण में ही सरसता और भावों के प्रवाह का संचार अधिक मात्रा में पाया जाता है।

धर्म और दया के प्रति यह गीत ही मानव हृदय में आनन्द-तत्वों का प्रवेश कर के उसे सुसंस्कृत एवं उत्तेजित करते हैं। जिस प्रकार कोयल की कूक मन को तुरन्त अपनी ओर आकर्षित करके हृदय में अपने प्यार का बहाव उत्पन्न कर देती है, उसी प्रकार यह गीत भी मानव की कूक ही होते हैं, जो जब कभी भी अपने मार्मिक स्वरों में गूँज उठते हैं तो सुनने वाले अनेक हृदयों से इनकी डोरियां तुरन्त जुड़ जाती हैं।

मयूर की कूक को ही ले लीजिये, उसके स्वर कितने प्यारे लगते हैं मनको, परन्तु एक विरहिणी को देखिए, जिसे मयूर के यह मन-मोहक स्वर चुभते हैं। सोचती है; 'मयूर क्यों कूकता है ? इस के शब्दों से तो मेरे हृदय में पीड़ा का ही जागरण होता है, फिर भी लोग कहते हैं कि, मयूर की कूक मन को सुख प्रदान करती है' उससे प्रभावित हो कर अपने विरही हृदय में प्रविष्ट हो जाने वाली पीड़ा को दबाने के लिये ही वह धीरे से गा उठती है। परन्तु तभी उसे अनुभव होता है कि जैसे इस गीत में लीन होकर मेरी पीड़ा दबती जा रही है, उसी प्रकार सम्भवत: यह पगला मयूर भी कूक कूक कर ही अपनी किसी व्यथा को दबाने की चेष्टा कर रहा है और शायद यह कूक ही उस के गीत हैं।

एक बार किसी विरहिणी के हृदय में एक मयूर के कूकने से जब दर्द उत्पन्न हुआ तो उसने पूछा, "हे मयूर! मेरे साजन तो मेरे पास हैं नहीं, फिर तेरी यह ध्वनि भला मुझे कैसे अच्छी लगे, इस से तो मेरा हृदय दुखता ही है, फिर इतना कुछ देखते हुये भी तू अपनी इस कूक को अलापना छोड़ क्यों नहीं देता?" तब उस प्रियतम के विरह में पागल ललना के ऐसे वचन सुन कर मयूर

ने जो कुछ भी उत्तर दिया, उस के मार्मिक भावों का अध्ययन एक राजस्थानी गीत रचियता के इस लोकगीत में देखिए—

मोरा मैं तने बरजियो
मत चढ़ बोल खजूर
थारा जल हरे टहूकड़े
म्हारा साजन दूर

× × ×

म्हे मगरेरा मोरिया
चक चढ़ चुग्ग कराँह
रुत आयां नव बोलस्याँ
तो हिय फूट मरांह

—[मैं ने तुझे कूकने से रोका था रे मयूर !
कि खजूर पर चढ़ कर तुम न कूका करो।
तेरा प्रियतम यह मेघ तो गूँज रहा है तेरे पास।
परन्तु मेरा साजन तो मुझ से दूर बैठा है।

× × ×

अरी ! मैं तो इस रेतीली भूमि का मयूर हूँ
यहां चढ़ कर अपना भोजन चुग लेता हूँ
और ऋतु आने पर यदि मैं न बोलूँगा।
तब तो मेरा हृदय ही फट जायेगा और मैं
मर जाऊँगा।]

आदि युग से आज तक गूँजते हुए मेघों को लख कर जाने कितनी विरहिणियों के हृदय व्याकुल हुए होंगे, और जाने कितनी चन्द्रिका के शृङ्गार से सजी हुई रातों ने उन के हृदयों की सुप्त विरह पीड़ा को आकर जगाया होगा। यदि इन से प्रभावित होकर ऐसा न हुआ होता, तो यह कैसे सम्भव है कि गीतों की पंक्तियों में उनका वर्णन कभी आ पाता।

क्योंकि किसी भी बात के प्रभाव-विशेष द्वारा ही कुछ कहने या करने की प्रेरणा मानव को मिलती है। और ऐसी ही दशा एक गीत रचयिता की भी होती है। उस के हृदय पर जब कोई चीज़ अपना गहरा प्रभाव अङ्कित कर जाती है, तो उसी प्रभाव की अन्तर में घुमरने वाली प्रतिक्रियाओं द्वारा उसे अपने

गीतों में उन बातों या उन के प्रभाव से उत्पन्न होने वाली अनुभूतियों को बांधने की प्रेरणा मिलती है।

एक विरहिणी की अवस्था को ही निहारिये। जाने कितने वर्षों से बेचारी इस पापी विरह की आग में झुलस रही है। जीना भी असह्य बन बैठा है उस के लिये। परन्तु अपने पिया से मिलन की आस उस में ऐसी कठोर समाई हुई है, जो प्राण भी तजने नहीं देती।

दिन, महीने और वर्ष पर वर्ष बीतते चले जाते हैं, और पिया के दर्शनों की भूखी वह प्रेम-पुजारिन उस की याद में सूख सूख कर काँटा हो गई है, परन्तु फिर भी रोके हुए है अपने इन निर्दयी प्राणों को,......केवल इसी भरोसे पर.......कि आज नहीं तो शायद कल ही उस के साजन लौट आएँ, और इसी लिए अत्यन्त दीन अवस्था को प्राप्त होती हुई भी वह निरन्तर अपने प्राणों को थामे रखने का ही प्रयत्न करती है।

ऋतुएँ बदलती हैं, और वे अपने साथ अनेक प्रकार के नवीन अलंकार लाती हैं, अपनी झोलियों में भर कर, इस जगती को सजाने के लिये,......ताकि इस की गोद में बसने वाला प्रकृति का भोला भाला मानव एक ही प्रकार के वातावरण में रहता हुआ कहीं ऊब कर अपना सर्वनाश न कर ले। और इस प्रकार अपनी भांति भांति की मनमोहक छबियां दिखा कर वह मनुष्य के थके हुये जीवन में नव-जीवन का रस भरती रहती हैं, ताकि उस में जीने की उत्सुकता बढ़ती रहे और वह अपने सर्वनाश से सुरक्षित रहे।

किन्तु मानव-मन को रीझने वाली इन ऋतुओं का, विरह में तपती हुई किसी ललना के लिये कैसा आकर्षण ? विरहाग्नि में झुलसते हुये उसके जीवन में इनका आकर्षण प्राण नहीं भर सकता, अपितु वह तो जीती है केवल इसी लोभ में आ कर, कि आने वाले दिनों में कभी न कभी तो उसे अपने प्रियतम का मिलन अवश्य ही प्राप्त होगा। और वह जीती रहती है, एक आस के सहारे,.......एक ऐसी आस के बल-बूते पर,.......जिस के प्रति उसे स्वयं भी यह ज्ञात नहीं होता, कि वह कब पूरी होगी। उसकी अवस्था एक उस नेत्रविहीन व्यक्ति के समान होती है, जिस ने कभी नेत्रों के होते हुए किसी सुन्दर वस्तु को देख कर, अपने हृदय में उस के प्रति कोई आकर्षण अनुभव किया हो, परन्तु अब नेत्रविहीन हो जाने पर तो सुन्दरता का आकर्षण अनुभव करने में वह बिल्कुल असमर्थ है। पर चाहे जो हो, फिर भी उसे इतना ज्ञान तो अवश्य ही होता है, कि सुन्दरता में मन को आकर्षित कर लेने की शक्ति निहित रहती है, और यदि उस के नेत्र ज्योतिमय होते तो वह उसका आंकन अवश्य ही कर लेता।

एक बिरहन भी फिर कैसे अनुभव कर पाये इन ऋतुओं के मन-मोहक काल को। उसकी तो वे तमाम शक्तियां जो मानव-हृदय में किसी वस्तु की विशेषता के प्रति आकर्षण जगाया करती हैं, प्रियतम-विरह की प्रचण्ड ज्वाला में झुलस कर पूर्ण-रूपेण शक्ति-विहीन हो चुकी होती हैं। फिर ऐसी अवस्था में वह उनके सुख का अनुभव कैसे आंक पाए। परन्तु इतना स्पर्श तो उसे लगता ही है, कि यह ऋतुएँ बड़ा सुख देने वाली होती हैं, और तब वह सोचती है, 'काश ! कि मेरे पिया भी आज मेरे समीप

होते, तो मैं भी इन ऋतुओं का जाने कितना सुख भोगने में समर्थ होती, और तब उसके हृदय पर एक धक्का सा लगता है,.... वह तड़प उठती है।

साँवरी सलानी घटाओं के उभार में मदहोश सावन भी फिर उसके तड़पते हुए हृदय को तसल्ली देने में असमर्थ होता है, अपितु उसके आगमन से उसे दुःख ही अनुभव होता है, क्योंकि एक वस्तु के होते हुए भी जब उसका सुख पहुँचाने वाला भोग यदि उसे प्राप्त न हो, तो फिर इस से दुःख की प्राप्ति होना तो स्वाभाविक ही है। इसी लिये तो वह खिझ उठती है, उसी नेत्रविहीन व्यक्ति की भांति जो सौन्दर्य के दर्शनाभाव में अपने नेत्रों की ज्योतिविहीनता पर अश्रुपात करता हुआ मौनता-पूर्वक दिन रात तड़पता रहता है।

पिया के प्रवास-काल में एक बिरहन भी दिन रात इसी प्रकार तड़पती है। प्रकृति के नियमों को निभाती हुई ऋतुएँ अपने नियत समय पर आती हैं, और उसके हृदय में बार बार उसके प्रवासी-पिया की याद जगाती हुई विरहाग्नि की झुलसा डालने वाली चिंगारियां भर कर लौट जाती हैं। परन्तु इस प्रचण्ड-काल में कोई क्षण भी तो ऐसा नहीं आता, जो उसके जलते हुए हृदय पर पिया-प्रेम के रस की वर्षा द्वारा उसकी तपन को दबाने में समर्थ हो। और जब इस ज्वाला में तपते तपते उसका जीवन-पुष्प मुर्झाने लगता है, तो पिया मिलन की आस का सहारा लेकर वह उसे स्थिर कर पाने का प्रयास करती है, और उसमें जीवन की नवीन लहरों का संचार करने के लिये ही वह गा उठती है।

अवध-प्रान्तीय एक 'बारहमासी गीत' में एक ऐसी ही विरहन का क्रन्दन सुनिए, जो विरह में पागल हुई अपने पिया-प्यारे की छाया को मन में बसा कर वर्ष भर की समस्त ऋतुओं और मासों का कैसा मर्म-स्पर्शी चित्र प्रस्तुत करती हुई कहती है---

आली री बिन श्याम सुन्दर
सो कल न परै रे
पहिला मास लग्यो कातिक आन
विरह बिथा तन लागत बान
जिय मोरा तलफत निकसत प्राण
केहि विधि राखौं पापी प्राण
सो कल न परै रे

आये री सखि अगहन मास
का कर राखौं जीवन आस
सो श्याम बिना मोहि सूनो है धाम
बिना पिउ नीक न येकौ काम
सो कल न परै रे

पूस मास पाला परत तुसार
बिन पिया जाड़ा न जाय हमार
लपटि कैसे सोऊँ बिनु रघुबीर
हनि हनि मारै करेजवा में तीर
सो कल न परै रे

माघ मास ऋतु लागे बसन्त
अजहुं न पायो पिया तेरो अंत

लिखौ कैसे पाती को लै के जाय
को निर्मोही को देई समुझाय
सो कल न परै रे

फागुन में सब घोरैं अबीर
मैं कैसे घोरूँ बिना रघुबीर
जरौं जैसे होरी उठत जैसे लूक
बिरह अगिनि तन दीनो है फूक
सो कल न परै रे

चैत मास बन फूले हैं फूल
हमरा बलम हम का गये भूल
खड़ी सरजू माँ मींजत हाथ
ऐसे समय पिय छोड़यो है साथ
सो कल न परै रे

बैसाख मास गवने की बहार
दिन सब बीत्यो ठाड़े दुआर
कब वह ऐहैं न रहे मन धीर
रहि रहि उठति करेजवा में पीर
सो कल न परै रे

जेठ मास बरसाइत होय
बर पूजन निकरी सब कोय
सखी सब कर के सोल्हौ सिंगार
मथवा की बिन्दिया अजब बहार
सो कल न परै रे

असाढ़ मास बहु बरसत मेह
पर्यो फफोला सारी देह
बिरह तन जरिगो लागी है लूक
बरखा फुहार दियो तन फूक
सो कल न परै रे

सावन मास में हरियर रूख
हमरा कमल गये बिना पिउ सूख
झूलों कैसे झूला बिना रघुबीर
तलफत प्राण न निकरत तीर
सो कल न परै रे

भादों मास गरुव गम्भीर
हमरे नयन भरि आये हैं नीर
जिया मोरे डूबै औ अतिराय
हमरा खेवैया परदेस में छाय
सो कल न परै रे

कुंवार मास बन बोल्यों मोर
उड़ु उड़ु गोरिया बलमु आये तोर
आयो पिया पूज्यो है आस
याही ते गावों बारह मास
सो कल न परै रे

—[सुनो री सखी ! कि मुझे अपने श्याम बिना,
एक पल भी चैन नहीं पड़ती ।
आज कार्तिक का प्रथम मास प्रारम्भ हो गया है,

विरह के दुःख-दाई बाण बुरी तरह चुभ रहे हैं।
मेरी आत्मा तड़पती है और प्राण निकले जा रहे हैं,
अब तुम ही कहो, कि मैं कैसे रोकूँ इन पापी प्राणों को
'''मुझे तो एक पल के लिये भी चैन नहीं आता
और फिर हे सखी! देखो अगहन का महीना आ पहुँचा है,
अब मैं अपने जीवन की आशा कैसे बंधाऊँ।
प्रियतम के बिना यह घर बार मुझे सूना प्रतीत हो रहा है,
और बिना साजन के मेरा किसी कार्य में भी जी नहीं लग रहा है।
''''कि मुझे तो एक पल के लिये भी चैन नहीं आता।
और पूस मास जब आया तो हर ओर तुषारपात प्रारम्भ हो गया,
किन्तु बिना प्रियतम के यह शीत छूटता ही नहीं।
फिर बिना प्रियतम के अब मैं किस के साथ लिपट कर सोऊँ,
कि विरह अपने तीर कस कस कर मेरे कलेजे पर छोड़ रहा है।
''''कि मुझे तो एक पल के लिए भी चैन नहीं आता।
और फिर माघ मास आया, तो बसन्त प्रारम्भ हो गई,
किन्तु रे निर्दयी साजन! तेरा अभी कुछ भी पता नहीं है।
मैं कैसे पत्र लिखूँ, और उसे ले कर फिर कौन जायगा,
अरी! कोई तुम ही जा कर मेरे निर्मोही प्रियतम को जाकर समझाओ।
''''कि अब तो एक पल के लिये भी मुझे चैन नहीं आता

और फिर फाल्गुण मास आया, तो हर ओर अबीर घुल
रहा है,
परन्तु मैं कैसे घोलूं अपना अबीर बिना अपने साजन के !
होली की भांति मेरा शरीर जल रहा है, और हर ओर से
लू के तूफ़ान उठते प्रतीत हो रहे हैं,
इस विरहाग्नि ने तो मेरा सारा शरीर जला कर राख कर
दिया है।
···कि अब तो एक पल के लिये भी मुझे चैन नहीं आता।
और फिर चैत्र मास आया तो बनों में भी फूल खिल
उठे हैं,
किन्तु मेरे पिया तो जैसे मुझे बिल्कुल ही भूल बैठे हैं।
सरयू नदी के बीच खड़ी आज मैं अपने हाथ मल रही हूँ।
कि हाय ! ऐसे समय में मेरे साजन ने मुझे मँझधार में
छोड़ दिया है।
····कि अब तो एक पल के लिये भी मुझे चैन नहीं
आता।
और फिर बैसाख मास आया तो हर ओर पिया घर जाने
की बहार आ गई है,
किन्तु मेरे दिन तो इस द्वार पर प्रतीक्षा में ही खड़े हुए
व्यतीत हुए जा रहे हैं।
अब मैं कैसे मन को समझाऊँ कि वह कब तक आयेंगे,
मेरे कलेजे में अब रह रह कर दर्द ही दर्द उठ रहा है।
···कि अब तो एक पल के लिये भी मुझे चैन नहीं आता।
और फिर जेठ का महीना आया, तो हर ओर रिमझिम
बरस उठी है,

बट-वृक्ष की पूजा को हर ओर नारियां निकलती हुई
दिखाई पड़ रही हैं।

और सारी सखियां अपने सोलह शृंगारों से अलंकृत
हो कर चली जाती हैं,
उनके मस्तक पर बिन्दियां कितनी मनमोहिनी लग रही हैं।
....कि अब तो एक पल के लिये भी मुझे चैन नहीं आता।
और फिर आषाढ़ मास आया, तो वर्षा कितनी कठोर
हो उठी है,
जिस कारण मेरी समस्त देह में छाले पड़े जा रहे हैं।
विरह की आग ने सारा तन जला डाला है,
और हर ओर से लू के प्रहार चुभते से प्रतीत हो रहे हैं,
और वर्षा की इन फुहारों ने मेरा सारा शरीर फूँक
डाला है।
....कि अब तो एक पल के लिये भी मुझे चैन नहीं आता
और फिर श्रावण मास आया, तो सभी पेड़ पौधे हरे
हो गये हैं,
किन्तु मेरा हृदय कमल तो बिन साजन के सूखता ही
जा रहा है।
बिना प्रियतम के अब मैं झूला कैसे झूलूं री।
प्राण तड़पते हैं, परन्तु विरह का तीर निकलता नहीं है।
...कि अब तो एक पल के लिये भी मुझे चैन नहीं आता
भादों मास आया तो हर ओर गहरे मेघों का साम्राज्य
छा गया है,
और इन्हें लख कर मेरे नयनों में आंसू अपने आप ही
उमड़ते चले आ रहे हैं।

मेरा हृदय डूबता जाता है, और जी बड़ा घबरा रहा है,
किन्तु मेरा प्रियतम तो परदेस में छाया हुआ है ।
....कि अब तो एक पल के लिये भी मुझे चैन नहीं आता ।
और अन्त में अब कुंआर मास आया, तो जंगलों में
मयूर शब्द कर उठे हैं,
कि हे गोरी ! अब तो उठ, कि देख तेरे साजन आये हैं ।
पिया आ गये, तो मेरी पूजा अब सफल हो गई,
इसी कारण मैं आज यह 'बारह मासी गीत गा रही हूं ।
....कि अब तो एक पल के लिये भी मुझे चैन नहीं आता]



अनुक्रमणिका



आभार-प्रदर्शन

'कब तक निहारूं" के प्रणयन में जिन पुस्तकों तथा पत्रिकाओं से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में जो भी सहायता प्राप्त हुई है, इसके लिये लेखक उनके विद्वान लेखकों, प्रतिष्ठित सम्पादकों तथा प्रकाशकों का अनुगृहीत है तथा उन के नाम इस प्रकार हैं—

१.	कविता कौमुदी	श्री राम नरेश त्रिपाठी
२.	ग्राम-साहित्य	श्री राम नरेश त्रिपाठी
३.	बेला फूले आधी रात	श्री देवेन्द्र सत्यार्थी
४.	धरती गाती है	श्री देवेन्द्र सत्यार्थी
५.	पंजाब दी आवाज	श्रीमती अमृता प्रीतम
६.	बुन्देलखण्डी लोकगीत	श्रीमती हीरा देवी चतुर्वेदी
७.	बुन्देल-खण्ड के लोकगीत	श्री उमा शंकर शुक्ल
८.	राजस्थानीय लोकगीत	श्री सूर्य करण पारीक
९.	भोज-पुरी लोकगीत	नागरी लि० देहली द्वारा प्रकाशित
१०.	यात्रा के पन्ने	महापंडित राहुल सांकृत्यायन

११.	पुरातत्व निबन्धावली	महापण्डित राहुल सांकृत्यायन
१२.	मध्य प्रदेश तथा बरार का इतिहास	इण्डियन प्रेस लि० प्रयाग द्वारा प्रकाशित
१३.	नया पथ	लोक साहित्य विशेषांक
१४.	'जागृति' के विभिन्न पुराने अङ्क	लोक सम्पर्क विभाग पंजाब द्वारा प्रकाशित
१५.	'हिन्दुस्तान साप्ताहिक' के विभिन्न पुराने अङ्क	टाईम्स आफ इण्डिया प्रेस देहली द्वारा प्रकाशित।
१६.	'हिम-प्रस्थ' के विभिन्न पुराने अङ्क	लोक सम्पर्क विभाग हिमाचल प्रदेश द्वारा प्रकाशित

अन्त में लेखक उन भाइयों और बहनों का भी विशेष-रूपेण कृतज्ञ है जिन के प्रोत्साहन स्नेह, रुचि तथा हार्दिक सहयोग से यह पुस्तक आदरणीय पाठकों के सामने आई।

श्री भरत सिंह 'गगन' आगरा, श्री राम निवास शर्मा पहुपी बास, मथुरा, सरदार गुरुबख्श सिंह पटियाला, श्री विश्वामित्र अम्बाला-छावनी, सरदार कुलवन्त सिंह साहनी देहली, बहन जगदीश कौर अम्बाला छावनी, श्रीमती कान्ती देवी वर्मा देहली, कु० बसन्ती देवी ग्राम सिरमौर, तथा कु० नन्दा चौधरी पटना, आदि के विशेष नाम लेखक को इस कार्य में यथासम्भव सहयोग पहुँचाने हेतु इस अवसर पर किसी प्रकार भी भुलाये नहीं जा सकते तथा अपनी ओर से लेखक उन सब का अभिवादन करता है।

—लेखक